॥ सन्ध्योपासन विधिः ॥

देव भाषा मानव भाषो भय
भाष्य भूषितः
काशीस्थ पंडितदत्त व्यवस्था

सहितः

श्री मधुसूदन गोस्वामिनासंदर्भितः

यह पुस्तक
बिद्वज्जन पदानुरक्त रायबहादुर श्री
बैजनाथजी बी० ए० की आज्ञानुसार
लाला रामानुज दयालु रईस मेरठ
व जाइन्ट सैक्रेटरी वैश्य महासभा
ने धर्म्माभिलाषियों के लाभार्थ
मुद्रित कराई

Curzon M... ...eerut.

॥ ओ३म् ॥

भूमिका ।

त्रिकाल सन्ध्या द्विज मात्र के लिये वेद विहित नित्य कर्म है और इसकी आवश्यकता इतनी है कि राजाओं को महाभारत में आज्ञा दीगई है कि "जो द्विज सन्ध्या न करें उनको दण्ड दे" "अहरहः सन्ध्या मुपासीत । इस वेद वाक्य से पाया जाता है कि सन्ध्या नित्य करनी उचित है और गोभिल सूत्र में कहा है कि "जो मनुष्य नित्य सन्ध्या नहीं करते वह इस जन्म में शूद्र होते हैं और मरणानन्तर श्वान योनि को प्राप्त होतेहैं" विष्णुपुराण में भी लिखा है कि जो मनुष्य प्रातः-काल और सायंकाल सन्ध्या नहीं करते वे दुरात्मा तामिस्र नरक को प्राप्त होते हैं । और कूर्मपुराण में कहा है कि जो मनुष्य सन्ध्या को छोड़ कर दूसरे किसी धर्म का अनुष्ठान करते हैं वह नरक को प्राप्त होते हैं । और दक्षस्मृति का बचन है कि जो मनुष्य सन्ध्या हीन हैं वह सदा अपवित्र और सब कर्मों के करने में अनधिकारी होते हैं

और उनका कोई कर्म फलदायक नहीं होता। मनुजी की भी यही आज्ञा है कि जो मनुष्य प्रातः-काल और सायंकाल की सन्ध्या नहीं करता वह शूद्रवत् द्विज कर्मों से पृथक् कर देने योग्य है। इस लिये द्विज मात्रको उचितहै कि सन्ध्या अवश्य करें परन्तु बिना अर्थ ज्ञान के सन्ध्या करना निष्फल है क्योंकि श्रुति कहती है कि जो कर्म अर्थज्ञान और श्रद्धापूर्वक किया जाता है वही फलदायक होता है जो मनुष्य बिना अर्थज्ञान के वेदपाठ करता है वह ऊंट के समान केवल भारवाही है और जो अर्थ सहित वेद को पढ़ता है वह इस लोक में सुखी रहकर स्वर्ग को प्राप्त होता है इस लिये व्यासजी का कथन है कि जो मनुष्य बिना अर्थ जाने वेद अथवा धर्मशास्त्र का पाठ करताहै उसका परिश्रम छिलके को छीलने के समान है और शास्त्र की भी यही आज्ञा है कि गुरु शिष्य को अर्थपूर्वक उपदेश करे क्योंकि शिष्य को अर्थ ज्ञान होना आवश्यक है और आपस्तम्ब ऋषिने कहा है कि जो गुरु शिष्य को गायत्र्यादि का उप-देश बिना अर्थ समझा के करता है वह और उसका

शिष्य दोनों महाघोर अन्धकार को प्राप्त होते हैं इस लिये सन्ध्या करने से पहिले उसके मन्त्रों का अर्थ जानना उचित है क्योंकि ऐसा करने से सन्ध्या के उपासक को पूरा फल मिलेगा और वह फल कुछ न्यून नहीं है क्योंकि सन्ध्या से चित्त की शुद्धि द्वारा इस लोक में सुख और आत्मज्ञान मोक्ष की प्राप्ति और संसार के सब बंधनों की निवृत्ति होती है मनुजी कहते हैं कि जो द्विज व्याहृति और प्रणव सहित नित्य गायत्री का जप करता है वह अपने पापों को क्षय करके स्वर्ग को प्राप्त होता है जैसे कि धातुओं के दोष अग्नि में तपाने से नष्ट होते हैं वैसे ही इन्द्रियों के दोष प्राणायाम से दूर होते हैं इसलिये व्याहृति और प्रणव और शिरो-मन्त्र सहित गायत्री का जप और उसके अर्थका अनु-सन्धान करना सब पापों को नाश करता है, सप्त-व्याहृति सात लोक हैं उनमें । " ओ३म् " अर्थात् प्रणव को परमात्मा दृष्टि करके जप करे प्राणा-याम से अधिक तप और गायत्री से श्रेष्ठतर जप नहीं और सत्य वाणी मौन से भी अधिक है । जिस पुरुष का यज्ञोपवीत होगया है उसको स्नान

और मार्जन पूर्वक सन्ध्या करनी उचित है। दिन और रात्रि की सन्धियों में जो कर्म किया जाय उसे सन्ध्या कहते हैं दूसरा अर्थ यह भी है कि जो सन्ध्या है वही जगत् को उत्पन्न करनेवाली मायातीत निष्कला चित्तशक्ति केवल ईश्वररूपिणी है उसी की उपासना करो। प्रातः सन्ध्या का काल किंचित् नक्षत्र दर्शन से सूर्योदय के पहिले तक और सायं सन्ध्या का काल किंचित् सूर्य्य दर्शन से नक्षत्र दर्शन पर्यन्त है मध्यान्ह संध्या मध्यान्ह होतीहै प्रातःकाल और सायंकाल इस उद्देश्य से रक्खे गये हैं कि प्रातःकाल रात्रि में सुखपूर्वक शयन करने से चित्त शान्त होता है और ईश्वर के ध्यान में भली प्रकार लग सकता है और सायंकाल में भी मनुष्य दिन भर के कामों के उपरान्त ईश्वर का ध्यान भली भांति करसकता है उसका श्रम निवृत्त होकर चित्त को शान्त करसकता है सन्ध्या नदी तीर अथवा और किसी पवित्र स्थान में करना इसी आशय से रक्खा गया है कि वहां पर कोई विघ्न और चित्त के क्षोभ की सामग्री नहीं होती। आचमन का उद्देश्य यह है कि शरीर की शुद्धि हो और संकल्प इस लिये

किया जाता है कि कार्य में दृढ़ता हो मार्जन से शारीरिक पापों की--जो दिन अथवा रात्रि में अज्ञान से किये गये हों--शुद्धि हो और वाह्य शुद्धि के अनन्तर अन्तः शुद्धि होनी उचित है अर्घ्य का उद्देश्य यह है कि जिस देवता को अर्घ्य देते हैं उसका आवाहन और ध्यान और पूजन करें कि जिससे वे हमारे ऊपर प्रसन्न हों।

इस प्रकार सन्ध्या देवता के साथ एकीभाव को प्राप्त होने से जप सफल होता है। गायत्री मन्त्रका लक्ष्यार्थ यह है कि अखण्ड पूर्णानन्द उपासकों को अभीष्टप्रद सकल जगत् के उपादान कारण सविता देवके सर्वोत्कृष्ट भर्ग अर्थात् अविद्यादि दोषनाशक तेज का हम ध्यान करते हैं जो चैतन्यरूप तेज हमारी अन्तःकरण की वृत्तियों को प्रेरणा करता है और गायत्री शिरोमन्त्र का यह अर्थ है कि जल तथा तेजरूप परमात्मा ही है। गायत्री शब्द से चित्त का ग्रहण किया जाता है इस लिये केवल सन्ध्या को विधिपूर्वक करने से मनुष्य मोक्ष का भागी होसकता है और सन्ध्या के लक्ष्यार्थ का भली भांति अनुसन्धान करने से दूसरे जप या और किसी कर्म की अपेक्षा नहीं रहती। यदि

सन्ध्या पूर्ण रीति से कीजाय तो सनातन वैदिक धर्म में ही पूर्ण श्रद्धा होगी और किसी धर्म में भटकने की अपेक्षा न होगी—श्री गोस्वामी मधुसूदनलाल जी महाराज को अनेक धन्यवाद है कि उन्होंने बड़े परिश्रम पूर्वक यह सन्ध्या की पुस्तक बहुत से भाष्यों और ग्रन्थों का आशय लेकर रची। काशी के पण्डितों ने जो व्यवस्था इस वर्ष में वैश्यों के यज्ञोपवीत और गायत्री के विषय में दी है वह यहां इस लिये लगाई गई है कि वैश्य मात्र को यज्ञोपवीत संस्कार करना अवश्य है वैश्य गायत्री वही है जो ब्रह्म गायत्री है और उपनयनपूर्वक सन्ध्या बन्दन करना सब द्विजों का धर्म है सन्ध्या के मन्त्र केवल वैश्यों के लिये नहीं है किन्तु द्विजमात्र के लिये हैं और काशी के सब विद्वानों की सम्मति है कि जो मन्त्र इस पुस्तक में छापे गये हैं वह द्विजमात्र के उपयोगी हैं॥

विद्वज्जनोंसे प्रार्थनाहैकि इसनित्यकर्मको अवश्यकरें और इसलोकमें सुख औरपरलोकमें मोक्षके भागी हों।

आगरा	विद्वज्जनों का सेवक
मार्गशीष पूर्णिमा सं. १९५६	बैजनाथ

सन् 1899.

उपक्रम

कर्म कांड में चार प्रकार के कर्म हैं १ वैदिक २ स्मार्त ३ तांत्रिक ४ पाखण्ड ॥

वैदिक कर्म केवल वेद मन्त्रों से किये जाते हैं उनके अवान्तर दो भेद हैं श्रौत और गृह्य। अग्निहोत्रादि राजसूयान्त समस्त कर्म श्रौत हैं और गर्भाधानादि श्राद्धान्त कर्म गृह्य हैं स्मृति और पुराण के मन्त्रों से जो कर्म होते हैं वे स्मार्त कहे जाते हैं ॥

तंत्र से जो कर्म होते हैं वे तांत्रिक संज्ञक हैं ॥ स्वेच्छाचारिता छल वा दंभ से जो कर्म किये जाते हैं वे पाखंड हैं ॥

संध्या वंदन वैदिककर्म ही है परन्तु स्मार्त और तांत्रिकों ने इस में बहुतसे पौराणिक और तांत्रिक मंत्र मिला दिये हैं। मैंने इस सन्ध्योपासन विधि में केवल वैदिक मंत्र ही लिखे हैं। स्मार्त वा तांत्रिक अत्यन्त प्रचलित मन्त्रों को नोट कर टिप्पणी के रूप में लिख दिया है ॥

संध्यावंदन की पुस्तक के दो भाग कर दिये हैं प्रथम भाग में केवल विधि की भाषा लिखदी है मंत्रों का

अर्थ इस लिये नहीं लिखा कि संध्या करने वालों को सरलता है मंत्रों का भाष्य दूसरे भाग में प्रकाश कर दिया है भाषा अर्थ सरल संक्षेप किया गया है व्याख्या सायन "गुणविष्णु" भट्टोजी दीक्षित और वनमाली मिश्र की व्याख्या के अनुकूल की है

गायत्री का भाष्य किसी मनुष्य का कृत नहीं लिखा है अग्नि पुराण के गायत्री भाष्य को लिख कर उसकी भाषा करदी है।

संध्या के प्रयोगमें त्रिविध शुद्धि पूर्वक श्रीभगवान की उपासना है। आचमन मार्जन के द्वारा जड़देह की शुद्धि होती है प्राणायाम से इन्द्रियों का और मन का शोधन होताहै ध्यान जपके द्वारा भावका शोधन होता है तब शुद्ध 'त्वंपदार्थ, जीव का तत्पदार्थ, श्री भगवान के साथ संमिलन होता है और जीव श्रीभगवान के सान्निध्य मय चिन्मय आनन्द रस का पान करताहै। यही परम पुरुषार्थ है इसी की प्राप्ति का प्रथम सोपान संध्या वंदनहै

आचमन

ऋत मित्यादिना जल मभिमंत्र्य पुनराचामेत् ॥

[फिर " ऋतंच सत्यंच ,, इस मंत्र से जल को अभिमंत्रण कर आचमन करै]

आचमन का मन्त्र

ओं ऋतंच सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्य जायत । ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः । समुद्रादर्णवादधि संवत्सरोअजा

४ कोई आचार्य ईशान मुख होकर आचमन मात्र करलेते हैं फिर पूर्व मुख वा सूर्याभिमुख होकर संध्या करते हैं। कोई आचार्य सब संध्यायें उत्तराभिमुख ही करते हैं। यह आचमन सन्ध्या का अंग नहीं है। सन्ध्या का अंग वही आचमन है जो ' ऋतंच , मन्त्र से किया जायगा।

५ इस आचमन में ओं केशवायनमः ओंनारायणाय नमः ओंमाधवायनमः ये तीन मन्त्र पढ़कर तीनबेर जल पीते हैं और ओं हृषीकेशायनमः यह पढ़ कर हाथ धोते हैं।

यत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ सूर्या चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वम कल्पयत् । दिवंच पृथिवीं चांतरीक्षमथोस्वः

ततो वारिणाऽऽत्मानं वेष्टयित्वा सप्रणव गायत्र्या रक्षां कुर्यात्

तदनंतर ' ओंकार गायत्री को, [६] पढ़ कर दाहने हाथ में जल लेकर अपने चारों ओर वेष्टनकर अर्थात् फिरा कर रक्षा करे ।

तदनन्तर प्राणायाम करे

प्राणायाम का विनियोग [७]

ओं कारस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्री छन्दोऽग्नि र्देवता शुक्लोवर्णःसर्वकर्मारम्भेविनियोगः

[६] गायत्री जप के प्रकरण में लिखी जायगी

[७] विनियोग, नाम मन्त्र को काम में लानेका है अर्थात् इस मन्त्र से यह काम करना, कोई आचार्य विनियोग का पाठ मात्र करते हैं, कोई हाथ में जल लेकर विनियोग पढ कर संकल्प के समान जल पृथ्वी में गेर देते हैं ।

संध्योपासन पूर्वांगम्

अथस्नात्वा धृत धौत युग्मवसनः कौशेयक्षौमाम्बरो वाकृतोर्द्ध्वपुण्ड्ः संध्यामुपासीत

भाषा

प्रथम स्नान कर [१] धुवे दो वस्त्र अर्थात् धोती दुपट्टा पहर कर [२] अथवा रेशमी दो वस्त्र पहर कर ऊर्द्ध पुण्ड्रतिलक लगा कर [३] संध्योपासन करे।

---

[१] याज्ञवल्क्य लिखते हैं 'स्नानमर्द्धैवतमंत्र, जिनका जल देवता है उन मंत्रों से स्नान करै।

[२] दुपट्टा न हो तो अंगोछा लेलेना चाहिये अथवा 'उत्तरीयाभावे तृतीयं यज्ञोपवीतम्, दुपट्टा अंगोछा नहो तो तीसरा यज्ञोपवीत पहनले

[३] वृहन्नारदीय में लिखा है " यज्ञोदानं जपोहोमः स्वाध्यायः पितृतर्पणं वृथा भवति विप्रेन्द्रा ऊर्द्ध पुण्ड्ं विना कृतम् ," ऊर्द्धपुण्ड्र तिलक लगाये विना यज्ञ दान जप होम स्वाध्याय पितृ तर्पण सब कर्म वृथा होता है।

श्री राधारमणोजयति

॥ अथ संध्या प्रयोग ॥

वामे पाणौ वहून् कुशान्- दक्षिणे पाणौ सपवित्रं कुशत्रयंच धृत्वा. सप्रणव गायत्र्या शिखां वद्ध्वा ऐशान्याभिमुखः आचामेत् ॥

अर्थ-बांये हाथ में बहुतसी कुशारखले [१] और दाहिने हाथ में पवित्री पहर कर तीन कुशा लेकर [२] ओंकार और गायत्रीपढकर शिखाबांधे[३]तदनंतर ईशान कोणकी ओर मुखकर [४] आचमनकरै[५]

१- अग्नि कार्यके निमित्त ये कुशा संग्रह किये जाते हैं केवल संध्या में इनके बिना भी कार्य होताहै । कोई आचार्य बांये हाथ में चार कुशा रखते हैं और उसका नाम उपग्रह है ।

२- इन कुशाओं से मार्जन करते हैं ।

३- यदि शिखा खुली हो तो बांधनी चाहिये बंधी होय तो खोल कर बांधने का कुछ काम नहीं है ।

सप्त व्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णि गनुष्टुप् बृहती पंक्ति तृष्टुप् जगत्यः छंदांसि. अग्निवाय्वादित्य बृहस्पति वरुणेन्द्र विश्वेदेवाः देवताः अनादिष्ट प्रायश्चित्ते प्राणायामे विनियोगः ।

गायत्र्याः विश्वामित्र ऋषि गायत्री छंदः सविता देवताऽग्निर्मुख मुपनयन प्राणायामे विनियोगः ।

गायत्री शिरो मंत्रस्य प्रजापति ऋर्षि त्रिपदा गायत्री छंदः ब्रह्माग्निवायु सूर्याः देवताः प्राणायामे विनियोगः ।

ओंकार का ब्रह्मा ऋषि गायत्री छन्द अग्नि देवता और शुक्ल वर्ण है समस्त कर्मों के आरम्भ में विनियोग है सात व्याहृतिओं का प्रजापति ऋषि गायत्री उष्णिक् अनुष्टुप् बृहती पंक्ति तृष्टुप् और जगती छन्द हैं अग्नि वायु आदित्य वृहस्पति वरुण इन्द्र और विश्वेदेवा देवता हैं अनादिष्ट प्रायश्चित्त के निमित्त प्राणायाम करने में विनियोग है

गायत्री का विश्वामित्र ऋषि गायत्री छन्द सविता देवता और अग्नि मुख है उपयमन और प्राणायाम में विनियोग है।

गायत्री के शिर (ओं आपोज्योति) मन्त्र का प्रजापति ऋषि, त्रिपदा गायत्री छन्द, ब्रह्मा अग्नि वायु और सूर्य देवता हैं प्राणायाम में विनियोग है। ८

इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा वद्धासनः सम्मीलितनयनो मौनी प्राणायाम त्रयं कुर्यात्।

[यह ऋषि आदिकों का स्मरण कर दृढ़ आसन बांध कर [९] मौन धारण कर तीन प्राणायाम करे]

---

[८] ऋषी छन्द और देवता का तात्पर्य यों लिखा है" यस्य वाक्यंसऋषिः या तेनस्तूयते सादेवता यद-क्षर प्रमाणं तच्छन्दः जो मन्त्र जिसका वाक्य है वही उसका ऋषि है। जितने अक्षरों से मन्त्रों के चरण बने हैं उसी के अनुसार उनका छन्द है जिस मन्त्र से जिसकी स्तुति कीजाती है वही उसका देवता है।

[९] यहां " आसन " शब्द से बैठने का प्रकार है चाहे पद्मासन से बैठे चाहे स्वस्तिक से बैठे।

अत्र वायोरादानकाले पूरकनामा प्राणायामः तत्र श्यामं चतुर्भुजं विष्णुं नाभौ ध्यायेत्। धारणकाले कुम्भकः तत्र कमलासनं रक्तवर्णं चतुर्वक्त्रं ब्रह्माणं हृदि ध्यायेत्। त्यागकाले रेचकः तत्र श्वेतं त्रिनयनं शिवं ललाटे ध्यायेत्। त्रिष्वप्येतेषु प्रत्येकं त्रिर्मंत्राभ्यासः प्रत्येक मोंकारादि सप्तव्याहृतयःओंकारादि सावित्री ओंकारद्वय मध्यस्थं शिरश्चेति। तस्यस्वरूपम्॥

प्राणायाम में तीन क्रियायें होती हैं पूरक, कुम्भक, रेचक, स्वास को ऊपर को चढ़ाने का नाम पूरक, और रोकने का नाम कुम्भक और छोड़ने का नाम रेचक है स्वास को ऊपर को खींचना रोक रखना और छोड़ देना इतने को एक प्राणायाम कहते हैं उसकी यह विधि है।

दाहिने हाथ के अंगूठे से दाहिनी नासिका के पुट को दाब कर बांई नासिका के छिद्र से स्वासको ऊपर को खींचे फिर दाहिने हाथ की कनिष्टा [कन्नी] और अनामिका अंगुली से बांई नासिका के पुट को दाब कर स्वास को रोके रहै फिर अंगूठे को हटाकर दाहिनी नासिका के छिद्र से स्वास को धीरे धीरे छोड़ दे।

[१०] और तीनों काल में अर्थात् पूरक, कुम्भक, रेचक, में ओंकार सप्त व्याहृती प्रणव सहित गायत्री

---

[१०] किसी आचार्य का मत यह है कि यह विष्णु ब्रह्मा शिव का ध्यान योगाभ्यास के प्राणायाम में करना चाहिये, सन्ध्या के प्राणायाम में पूरक, कुम्भक, रेचक, में तीन वेर आगे लिखे समस्त मन्त्र का जप ही यथेष्ट है॥

और गायत्री शिर मन्त्र को तीन तीन बार जप करै। वे सब मिलकर जो मन्त्र होता है वह आगे लिखते हैं।

जब अंगूठे से दाहिनी नासिका बन्द कर पूरक करे अर्थात् स्वास को ऊपर को खींचे तब श्याम-सुन्दर चतुर्भुज विष्णु भगवान का नाभि मण्डल के पास ध्यान करे।

जब दोनों नासिका बन्द कर कुम्भक करे तब हृदय में रक्त वर्ण चतुर्मुख ब्रह्मा का ध्यान करै जब बांई नाक बन्द कर दाहिनी नासिका से स्वास छोड़े अर्थात् रेचक करे तब अपने ललाट में शुक्ल वर्ण त्रिनयन शिवजी का ध्यान करे॥

ओंभूः ओंभुवः ओंस्वः ओंमहः ओंजनः ओंतपः ओंसत्यम् ओंतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ओंआपो ज्योतिरसोमृतं ब्रह्मभूर्भुवःस्वरोम्

मार्जनम्

ततः सूर्यश्चमेति ब्रह्मा ऋषिः प्रकृतिश्छ-

न्दः सूर्योदेवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः सूर्यश्चमा, इस मन्त्र का ब्रह्मा ऋषि है प्रकृति छन्द है सूर्य देवता है जल स्पर्श में विनियोग है॥

मन्त्र

ओम् सूर्यश्चमा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचाहस्ताभ्यां पद्भ्या मुदरेणशिश्ना रात्रिस्तदवलुंपतुयत् किंचिद् दुरितं मयि इदमहं ममृतयोनौसूर्येज्योति षि जुहोमिस्वाहा। 'इतिप्रातराचामेत्,

ओम् 'सूर्यश्च' इस ऊपर लिखे मन्त्र को पढ़ कर प्रातःकाल संध्या करने के समय आचमन करै। यह आचमन मार्जन का अंग है और तीनों कालों में तीन मन्त्रों से किया जाता है। "ओम् सूर्यश्चमा" यह तो प्रातःकाल की संध्या के समय आचमन करने का मन्त्र है मध्यान्ह काल और सायंकाल के आचमन के दोनों मन्त्र विनियोग सहित आगे लिखे हैं। उन्ही से उस समय आचमन करना चाहिये।

आपःपुनंत्वाति विष्णु ऋषिरनुष्टुप्छन्दः आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः

'आपः पुनन्तु' इस मन्त्र का विष्णु ऋषि अनुष्टुप् छन्द जल देवता, जल स्पर्श में विनियोग है

ओं आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातुमां पुनन्तु ब्रह्मणस्पति ब्रह्म पूता पुनातुमाम्। यदुच्छिष्टम भोज्यंच यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतांच प्रति ग्रह ँ स्वाहा॥

इति मध्यान्हे आचामेत्।

ओं आपः पुनंतु[इस मन्त्रसे मध्यान्ह में आचमनकरे]

अग्निश्च मेति रुद्र ऋषिः प्रकृतिश्छंदो ऽग्निर्देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

अग्निश्चमा' इस मन्त्र का रुद्र ऋषि प्रकृति छन्द अग्नि देवता है जल स्पर्श में विनियोग है।

ओं अग्निश्चमा मन्युश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षंतां यदन्हा पापमकार्षं मनसा

वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्या मुदरेण शिश्ना अहस्तदवलुंपतु यत् किंचिद्दुरितं मयि इदमहममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥

इत्यनेन सायमाचामेत्

'ओं अग्निश्चमा' इस मन्त्र को पढ़कर सायंकाल की सन्ध्या के समय आचमन करे ॥

ये तीनों आचमन तीनों काल में यहीं पर अर्थात् प्राणायाम के पीछे और मार्जन के पहले करने होंगे। इसके पीछे मार्जन करे ॥

ततः आपो हिष्ठेति ऋचस्य सप्तभिः पदैः शिरसि अष्टमेन भूमौ नवमेन पुनः शिरसि कुशात्रयेण जलं क्षिपेत् । इदमेव मार्जनम् ॥

" ओं आपो हिष्ठा " इत्यादि तीन ऋचाओं के नौ टुकड़ों से मार्जन किया जाता है उसकी विधि

यह है किसी पात्र में (११) जल लेकर बांयें हाथ पर रखले और दाहिने हाथ में तीन कुशा लेकर मन्त्र का एक एक टुकड़ा पढ़ता जाय और मस्तक पर जल छिड़कता जाय मन्त्र के सात टुकड़ों से मस्तक पर आठवें से पृथ्वी पर नवें से फिर सिर पर छिड़कले इसी का नाम मार्जन है ॥

ओं आपोहिष्ठेत्यादि ऋचस्य सिंधुद्वीप ऋषिर्गायत्री छन्दः आपोदेवता मार्जने विनियोगः ।

"ओं आपो हिष्ठा" इत्यादि तीन ऋचाओं के समुदाय का सिन्धु द्वीप, ऋषि, गायत्री, छन्द, जल देवता है । मार्जन में विनियोग है ॥

१—ओं आपो हिष्ठा मयो भुवः । २—ओं तान ऊर्जे दधातनः । ३—ओं महेर-

(११) कोई कोई आचार्य पात्र में ही जल रखकर बायें हाथ पर लेने का विधान करते हैं कोई कहते हैं कि पात्र न हो तो बायें हाथ के चुल्लू में ही भर कर मार्जन करै ।

णाय चक्षसे । ४—ओं योवः शिवतमो
रसः । ५–ओं तस्य भाजयते हनः । ६
ओं उशतीरिव मातरः । ७–ओं तस्माअ
रंग मामवः । ८–ओं यस्य क्षयाय जिन्वथ
९–ओं आपोजन यथाचनः ।

ओं आपोहिष्ठा मन्त्र पढ़कर सिर पर जल छि
"ओंतान" से फिर सिर पर । "ओं महेरणाय
से सिर पर "ओं योवः" से सिर पर "ओं तस्य,"
सिर पर । "ओं उशती" से सिर पर "ओं तस्मा
से सिर पर । "ओं यस्य" से पृथ्वी पर । "ओं आपं
से फिर सिर पर छिड़कलें ।

पुनर्मार्जनम्

ततः ओंकारेण जलमादाय वार
त्रयं 'द्रुपदां, पठित्वा तज्जल
शिरसिक्षिपेत् ।

अर्थ-तदनन्तर ओंकार से हाथ में जल लेकर
तीन बार "द्रुपदा" मन्त्र पढ़कर अपने मस्तक
जल छिड़के ।

द्रुपदा दिवेतिकोकिलो राजपुत्र ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः आपो देवता सौत्रामण्य वभृथे विनियोगः ।

अर्थ--" द्रुपदादिवं ,, मन्त्र का कोकिल राजपुत्र ऋषिः अनुष्टुप् छन्द, जल देवता सौत्रामणी यज्ञ के अवभृथ (यज्ञान्तस्नान) में विनियोग है

द्रुपदा दिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुंधंतु मैनसः ॥

अघमर्षण

ततः करस्थं जलं नासायां योजयित्वाऽऽयतासु स्नायता सुर्वा त्रिः सकृद्वाऽघमर्षणमुजपेत् ॥

अर्थ--तदनन्तर हाथ में जल लेकर नासिका के पास लगाकर चाहे पहले के अनुसार पूरक, कुम्भक रेचक, प्राणायाम करे चाहे विना प्राणायामके तीन बेर अघमर्षण मन्त्र जप करे तीन बेर न होसके तो एक बेर जप करे ।

अघमर्षण सूक्तस्य अघमर्षण ऋषिरनु
ष्टुप् छन्दो भाववृतं दैवतं अश्वमेधा
वभृथविनियोगः ॥

अर्थ--अघमर्षण सूक्त का अघमर्षण नाम ऋषि
है अनुष्टुप छन्द है भाववृत देवता है अश्वमेध
यज्ञ के अवभृथ स्नान में विनियोग है ।

अघमर्षण सूक्त

ओं ऋतंच सत्यंचाभीद्धात्तपसो ऽध्यज
यत ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णव
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत अ
हो रात्राणि विदधाद्विश्वस्यमिषतो वशी
सूर्याचन्द्र मसौधाता यथा पूर्व मकल्पयत्
दिवंच पृथिवीं चान्तरिक्ष मथोस्वः ॥

तज्जलं भूमौ क्षिपेत्

अर्थ-उस अघमर्षण के जल को पृथिवी पर गिरा
देवे ।

तत ओं अंतश्चरसीत्या चामेत्

अघमर्षण के अनन्तर "ओं अन्तश्चरसि" इस मन्त्र से आचमन करे [१२]

अन्तश्चरसीतितिरश्चीन ऋषिरनुष्टुप्छन्दः आपो देवता आपामुपस्पर्शने विनियोगः।

"ओं अन्तश्चरसि" का तिरश्चीन ऋषि अनुष्टुप् छन्द जल देवता है जल स्पर्श में विनियोग है।

ओं अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतो मुखः त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारः आपोज्योति रसोऽमृतम् ॥

ततः उत्थाय ।

ओंभूर्भुवःस्वस्तत् सवितुरिति गायत्र्या पुष्पमिश्रं जलं सूर्याऽभिमुखं क्षिपेत् ।

अर्थ--तदनन्तर उठकर खड़ा होकर पुष्पजल अंजली में लेकर वा अर्घ्य पात्र में लेकर "ओं

[१२] यह आचमन अघमर्षण का अंग है।

भूर्भुवस्वः तत्सवितु र्वरेण्यम् ,, इस गायत्रीमन्त्रको (१३) पढ़कर सूर्य्य के अभिमुख अर्घ्य दे [१४]

उपस्थान

ततो भूम्य लग्न गुल्फ तल भागो वा (१५) भूमि लग्नैक चरणोवा भूमि लग्नार्द्ध चरणोवा प्रातः सायं कृतांजलिर्मध्यान्हे ऊर्द्धबाहुः सूर्य मुपतिष्ठेदेभिर्मंत्रैः ॥

तदनन्तर टकने पृथ्वी को स्पर्श न करें ऐसे बैठ कर वा खड़ा होकर वा एक पैर से खड़ा होकर वा आधे पैर पृथ्वी में टिके रहें इस भांति खड़ा होकर प्रातःकाल सायंकाल अञ्जली बांध कर

(१३) यह मन्त्र जपके प्रकर्ण में पूरा लिखा जायगा

(१४) कोई आचार्य प्रातःकाल और सायंकाल की सन्ध्या में सूर्य को तीन तीन अञ्जली और मध्यान्ह में एक अञ्जली देते हैं कोई कोई तीनों काल में एकही एक अञ्जली देते हैं ।

मध्यान्ह में दोनों हाथ ऊपर उठाकर नीचे प्रकाशित चार मन्त्रों से सूर्य का उपस्थान करे।

वे चार मन्त्र ये हैं १—उद्वयन्तमसः २—उदुत्यम् ३—चित्रंदेवानां ४ तच्चक्षुर्देवहितं ॥

उद्वयमित्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषिर्गायत्री छंदः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः

अर्थ—उद्वयं इस मन्त्र का हिरण्य स्तूप ऋषि है गायत्री छन्द है सूर्य देवता है सूर्य के उपस्थान में विनियोग है ॥

मन्त्र

ओं उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् देवं देवत्रा सूर्य मगन्मज्योति रुत्तमम् १

उदुत्य मिति प्रस्कण्व ऋषिर्गायत्रीछन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः

अर्थ—उदुत्यं इस मन्त्र का प्रस्कण्व ऋषि है गायत्री छन्द हैं सूर्य देवता है और सूर्य के उपस्थान

में विनियोग है।

ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ २ ॥

चित्रामिति कौत्स ऋषिस्त्रिष्टुप्छंदः सूर्यो देवता अग्निष्टोमोपस्थाने विनियोगः ॥

चित्रं देवनां इस मंत्रका कौत्स ऋषी है त्रिष्टुप् छन्द है सूर्य देवता है अग्निष्टोम के उपस्थान बिनियोग है।

ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षु मित्रस्य वरुणस्याग्नेः आप्राद्यावा पृथवी अन्तरिक्ष ँ सूर्य आत्मा जगतस्तथुषश्च ३

तच्चक्षुरिति दध्याङ्गाथर्वण ऋषिरक्षरातीत पुर उष्णिक् छन्दःसूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः

मन्त्र

तच्चक्षु, इस मन्त्र का दृध्यं आथर्वण ऋषि

है अक्षरातीत पुर उष्णिक छन्द है सूर्य देवता है सूर्य के उपस्थान में विनियोग है

ओंम् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतᳬ शृणुयाम शरदः शतः प्रब्रवाम शरदः शत मदीनाः स्याम शरदः शतम् भूयश्च:शरदः शतात् ॥

अथ गायत्री जप

ओं हृदयाय नमः ओंभूः शिरसे स्वाहा ओंभुवः शिखायैवषट् । ओं स्वः कवचायहुं

गायत्री जप के आरम्भ में न्यास (१५) ध्यान (१६) आवाहन (१७) और उपस्थान किया जाता है प्रथम न्यास लिखते हैं

[यहतांत्रिक विधानहै इसका अर्थ है मन्त्र के टुकड़ों को अपने अंगोंमें रखकर आप मन्त्र मूर्तिहोजाना

[१६] मन में देवता का रूप चिन्ता करना

[१७] आवाहन देवता को बुलाना

ओं भूर्भुवःनेत्राभ्यां वौषट् । ओंभूर्भुवःस्व अस्त्रायफट् । इत्यंगानि त्रिरावर्त्य ऋष्यादिकं स्मरेत् ॥

"ओं हृदयाय नमः" यह कहकर दाहिने हाथ की पांचों अंगुलियों से हृदय का स्पर्श करै ऐसेही जिन जिन वाक्यों में जिन जिन अंगो का नाम है उनको पढ़ कर उन्हीं उन्हीं अंगों का स्पर्शकरे ओं भूः शिर से स्वाहा कह कर सिर का स्पर्श करै ओं भूः शिखायै वषट् कह कर शिखा स्पर्श करै ओं स्वः कवचायहुं कह कर दाहिने हाथ को बाएं कन्धे से लेकर अंगुलियों तक और बाएं हाथ को दाहिने कन्धे से लेकर अंगुलियों तक एक संग फेरता जाय ओं भूर्भुवः नेत्राभ्यां वौषट् कह कर दाहिने हाथ से क्रमशः दाहनी बांई आंखों का स्पर्श करै, ओं भूर्भुवः स्वः अस्त्रायफट् कह कर अपने दाहने हाथ को वामावर्त घुमाकर बायें हाथ पर लाकर ताली बजादे [१८] इस भांति तीन बेर न्यास करै

[१८] कोई २ आचार्य दाहिने हाथ को अपने चारों ओर घुमाते समय बराबर चुटकियां बजाते हैं ताली नहीं बजाते ।

फिर पूर्वोक्त ऋष्यादि स्मरण करै

ओं कारस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दोऽग्नि देवता शुक्लोवर्ण : जपे विंनियोगः त्रिव्या हृतीनां प्रजापति ऋषिर्गायत्र्युष्णि गनुष्टुप् छन्दास्य ऽग्निवाय्या दित्या देवताः जपे विनियोगः

गायत्र्याः विश्वामित्र ऋषिर्गायत्रीछंदः सविता देवता जपे विनियोगः [१९]

ओंतेजोसि, इतिध्यात्वाआवाहयेत्

ओं तेजोसि इस मन्त्र से गायत्री का ध्यान कर [२०] आवाहन करै

---

[१९] इस विनियोग का अर्थ लिख चुके हैं भेद इतनाही है कि वहां तान व्याहृती हैं और यहां तीन वहां प्राणायामसें बिनियोगहैं और यहांजपमें

[२०] कोई २ आचार्य 'ओंतेजोसि' इसी मंत्र को गायत्री का ध्यान और आवाहन मानते हैं, कोई आचार्य ओं, तेजोसि मन्त्र से आवाहन करने के प्रथम 'ओं स्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशयवसनातया ॥ श्वेतै विंलपनैः पुष्पैरलंकारैश्च भूषिता । आदित्य

तेजोसीति देवाः ऋषयः गायत्री छन्दः
शुक्रम् दैवतम् गायत्र्या वाहने विनियोग

तेजोसी इस मन्त्र के देवता ऋषी हैं गायत्री छन्द है शुक्र देवता हैं गायत्री के आवाहन विनियोग है ।

मन्त्र

ओं तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसिधामन मासि प्रियं देवानाम नाधृष्टं देवयजनम गायत्र्यसीति उपस्थानं कुर्यात्

गायत्र्यसि,, इस मन्त्र से गायत्री का उपस्थान

मण्डलस्थाच ब्रह्मालोक गतायवा । अक्ष सूत्र देवी पद्मासन गता शुभा ,, यह ध्यान करते कोई कोई आचार्य प्रातःकाल गायत्री मध्यान्ह सावित्री, और सन्ध्या में सरस्वती, इस भां त्रिकाल तीन ध्यान करते हैं परन्तु यह सब तांत्रि विधान है वैदिक नहीं है इससे हमने इसका में उल्लेख नहीं किया कोई " आयाहि वरदे दे अक्षरे ब्रह्मवादिनी गायत्रि छन्दसांमातर्ब्र नमोस्तुते,, इससे आवाहन करतेहैं ।

मन्त्र

ओं गायत्र्य स्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्य पद्यसि नहि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसे साव. दोम् (२१)

प्रातः प्राङ्मुखो मध्यान्हे सूर्याऽभिमुख स्तिष्ठन् सायं पश्चिमाऽभिमुख उपविष्टो विधिना गायत्रीं जपेत्

प्रातःकाल पूर्वाऽभिमुख होकर मध्यान्ह में सूर्याऽभिमुख [२२] और सायंकाल में पश्चिमाऽभिमुख होकर बैठकर यथा विधि अर्थात् एकाग्र मन पर तत्व का ध्यान कर गायत्री मन्त्र का जप करै ।

जप करने की गायत्री का स्वरूप

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॥

[२१] सावदो माप्रापत् इतना पाठ भी कहीं २ है

२२ कोई ऊपर को मुख करते हैं कोई मध्यान्हमें उत्तराऽभिमुख होते हैं कोई जहां से सूर्य दर्शन हो वहीं सन्ध्या करते हैं ।

सहस्रवारं शतवारं दशवारं वा गायत्री जप कुर्यात्

समय और अवसर हो तो १००० हज़ार वार नहीं १०० वार नहीं तो दशही वार गायत्री का जप

ततः स्वयंभूरसीति भास्करं प्रदक्षिणं कुर्यात्

तदनन्तर स्वयंभूरसि इस मन्त्र से सूर्य की प्रदक्षि

स्वयंभूरसि श्रेष्ठोरश्मिर्वर्चोदाअसिवर्चो देहि सूर्यस्या वृतमन्वावर्ते ।

ततः देवागातु विदः इति गायत्री विसर्जनं कुर्यात्

तदनन्तर देवागातु विदः इस मन्त्र से गायत्री का विसर्जन करै

देवागातुविदो गातुवित्वा गातुमित मनसस्पते इमंदेवयज्ञं स्वाहा वातेधाः

॥ इति सन्ध्या ॥

अथ सन्ध्या भाष्यम्

ओं ऋतंच सत्यंचेति ऋग्वेद १०।१९०।१-३।

ऋतंच सत्यंचेति परब्रह्म उच्यते तथाच श्रुतिः ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म, सत्यंज्ञान मनन्तं ब्रह्म, आसीदित्यध्याहार्यम् । तेनायमर्थः। ऋतंच सत्यंच परंब्रह्म मात्रासीत् एतेनमहा प्रलयाऽवस्था प्रतिपादिता ॥ महाप्रलय समयेतुकेवलं ब्रह्मैवासीदित्यर्थः । ततोमहा प्रलयावस्था यामेव रात्र्यजायत, रात्रिस्स मुत्पन्ना, सकल मंधकारमय मासीदित्यर्थः तथाचमनुः आसीदिदं तमोभूत मप्रज्ञात मिति [१-५] ततो महाप्रलया वसाने सृ-ष्ट्यारम्भ समये तपसोऽदृष्टवलात् समुद्रो ऽजायत कीदृशः अर्णवः अर्णः पानीयम् तद

स्यास्ती त्यर्णवः । पानीय युक्तः । प्रथमत
सकल सृष्टि निमित्तम् जलराशिस्समुत्पन्न
इत्यर्थः तथाचमनुः अपएव ससर्ज्जादौता
बीज मवासृजत् १-८ कीदृशः तपसः अभ
द्धात् आभिसर्वतो भावेन इद्धात्लब्धवृ
प्रलयसमयेहि निरुद्ध वृत्य दृष्टम् भव
ततोऽनन्तरं समुद्रात् अर्णवात् धाता सृ
अध्य जायत किम्भूतो धाता मिषतः.प्र
भवतो विश्वस्य वशीप्रभुः । महाप्रलयेवि
सस्य त्रैलोक्यस्य निर्माणे प्रभु रित्यर्थः
सधाता यथा पूर्वंयथा क्रमम् सूर्याचन्द्रमसौ
अकल्पयत् किम्भूतौ अहोरात्राणि विदध
अहोरात्राणि कुर्वाणौ.सूर्यएवाहि दिवसंच
एवरात्रिं करोतीत्यर्थः ॥ ततःसूर्याचद्रमसौ
उत्पत्त्यनन्तरम्संवत्सरोऽजायतसमुत्पन्न
सूर्यचन्द्रोत्पत्तौ दिन रात्रि विभाग कल्पन

था संवत्सर संभवः॥ अतो अनन्तरं दिवंच पृथवीं चान्तरीक्षंच स्वश्च एतानि सएव धाता अकल्पयत्। स्थावर जङ्गमात्मक मखिल लोकं सएव धाता ससर्जेत्यर्थः॥

भाषा

प्रथम (सृष्टि के पूर्व में) केवल ऋत और सत्य अर्थात् परतत्व ही था। और सब तत्व लीनथे उसी अवस्था का नाम प्रलय है वही " रात्रि हुई थी, अर्थात् अन्धकार था " तदनन्तर प्रलय के अन्त में सर्व तो भावसे प्रकाशित तप अर्थात् ईश्वर की ज्ञान शक्ति से प्रकाशित क्रिया शक्ति और जीवों के अदृष्ट से जलमय समुद्र उत्पन्न हुआ उस समुद्र से प्रकाशित जगत का प्रभु विधाता हुआ, विधाता ने रात्रि दिन के विभाग करने वाले सूर्य चन्द्र को यथा पूर्व जैसे पूर्व कल्प में थे उत्पन्न किया सूर्य चन्द्रमा की गति और दिन रात्रि के विभाग से संवत्सर हुआ और तदनन्तर दिवलोक पृथिवी अन्तरीक्ष और स्वर्गादिक लोक उत्पन्न किये।

ओं सूर्यश्च मा मान्युश्चेति। तैत्तरीय आरण्यक १०-२५

सूर्यश्च मन्युर्यज्ञः मन्युपतयः यज्ञाधिपा इन्द्राद्य देवाः पापेभ्यो मा मां रक्षन्तां किं भूतेभ्यः मन्युकृ भ्यः यज्ञसमुत्पन्नेभ्यः अविधि कारिता अपूर्ण का रिता खलु यज्ञापराधः सएव पाप इत्युच्यते । यद्व मन्युः क्रोधः तत्कृतेभ्यः पापेभ्यः मन्युपतयः इन्द्रि याणि मन्युः क्रोधश्च रक्षंतां । समेदृशः क्रोधो भूद्येनाऽहं पाप कर्म कुर्यां । रात्रा यत्किञ्चित् प मनसा वाचा हस्ताभ्यां उदरेण शिश्ना अकार्षं रा तत् अवलुम्पतु नाशयतु यत्किञ्चिद्दुरितं मयि श्रितं तदिदं आपः अहं सूर्ये जुहोमि कीदृशि ज्यो तिषि हृत्पद्मस्थिते प्रकाशरूपे स्वाहा सुहुतमस्तु

भाषा

सूर्य मन्यु यज्ञ, और यज्ञ के पति देवता मुझे उन पापों से रक्षा करैं कि जो अविधि करने वा अपूर्ण यज्ञ करने से होते हैं ।

यद्वा-क्रोध और क्रोध के उदय होनेवाली इन्द्रियां मुझे क्रोधकृत पापों से रक्षा करैं अर्थात् मुझे ऐसा क्रोध न हो जिससे मैं कुछ पाप करने में प्रवृत्त होजाऊं । रात्रि में जो कुछ पाप मैंने मनसे वाणी से हाथों से पैरों से उदर से शिश्न से किया हो रा

मेरे उस समस्त पाप को नाश करे मुझ में जो कुछ पाप है वह मैं "इदं आप * इस जल रूप से * अपने हृदय में स्थित ज्योतिरूप सूर्य अर्थात् परमात्मा में होम करता हूं स्वाहा ।

आपः पुनन्त्विति ।

आपः पृथिवीं पुनन्तु पृथिवी अद्भ्यः पूतासां पुनातु ब्रह्मण ज्ञानस्यपतिं आश्रयं परमात्मानंपुनंतु ब्रह्मपूतापूतं सत्मांपुनातु मां किं पुनातु तदपेक्षाया माह यत् उच्छिष्टम् यत् अभोज्यंच यत्वादुश्चरितं असतां च प्रतिग्रहं तत्सर्वं आपः पुनन्तु एवंमां पुनंतु स्वाहा ॥

भाषा

जल पृथिवी को पार्थिव स्थूल देह को पवित्रकरें पृथिवी पवित्र होकर मुझे पवित्र करे) जल ज्ञान के आश्रय परमात्मा को शुद्ध करे । ब्रह्म पवित्र हो

---

* अपने पापों को जल में भावनाकर वा जलरूप भावना कर परमात्मा में होम करना, यह आचमन करने का रहस्य है ।

* यह होम का मन्त्र है इसका अर्थ यहहै कि जो मैंने होम किया है वह सुहुत हो । "वा,, मैंने जो कहा है सुष्ठु उक्त हो ।

कर मुझे शुद्ध करे। जो कुछ उच्छिष्ट भोजनके अनंत
हाथ मुख नधोनेकी अपवित्रता है जोकुछ अभोज्य
नहीं खानेके योग्य वस्तुओं के खालेनेसे अशुद्धि है
और कुछ हमारा दुश्चरित है अर्थात् दुराचारहै जो
कुछ असत् पुरुषों के दान लेने का दोष है इन स
स्त दोषों से जल मुझे पवित्र करैं ' स्वाहा'

अग्निश्च मति तत्तरीय आरण्यक । १०

अग्निश्च मन्युश्च मन्युकृतेभ्यो पापेभ्यः रक्षन्तां
मनसावाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यां उदरेण शिश्ना अह
यत् पापमकार्षम् तत् अहःअवलुंपतु मयियत् किं
दुरितंतत्इदं जलरूपं अहं अमृतयोनौ सत्येज्यो
तिषि जुहोमि स्वाहा ॥

भाषा

अग्निऔर मन्यु [यज्ञ] अथवा (क्रोध) मन्युपति
यज्ञाधिष्ठाता देवता अथवा क्रोधाधिष्ठित इन्द्रि
यादि मुझे मन्युकृत पापसे रक्षाकरे जोपापमैंने दिन
के समय मनसे वाणी से हाथों पैरोंसे उदरसे शिश्न
से किये हैं दिन उनको बिनाश करै जो कुछ मुझमें
दुरित है अर्थात पापहै वह यह जल रूपसे में सत्य

ज्योतिअमृतयोनि परमात्मा में होम करताहूंस्वाहा

आपो हिष्ठे त्यादि। यजुर्वेद अ० ११ मं० ५० । ५१ । ५२ ।

हे आपः हि यस्मात् यूयं मयो भुवः मयःसुखं तस्य भुवः भावयित्र्यः स्थः सुखदायिन्यो भवथः तस्मात् नो अस्मान् ऊर्जे अन्नाय दधातन स्थापयत । किंच महे महते रणाय रमणीयाय चक्ष से दर्शनाय दधातन इतिपूर्वेणैव सम्बधः । अयमर्थः हे आपः यस्मात् यूयं सुख प्रापयथ तस्मात्कारणात् अस्मान् ऐहिकेनार्थेन पारत्रिकेणच महारमणीय दर्शनेन पर ब्रह्म साक्षात् कारेण संयोजयत

इति जल प्रार्थना

भाषा

हे जल वा हे जल देवता गण तुम सुख के उत्पन्न करने वालेहो इस हेतु हमारेलिये अन्नका विधान करो और। परमरमणीय ब्रह्म का दर्शन विधान करो इसमें जलसे यह प्रार्थनाहै कि तुम सब सुखों के कारण हो इस लोक में अन्न का सुख और पर लोक में भगवत दर्शन का सुख हमको प्रदान करो

ओं योवः शिवत मोरस इति

हे आपः वः युष्माकं यः शिवतमः परम कल्याण स्वरूपः रसः तस्यरहस्य इय नः अस्मान् भाजयत भागिनः कुरुत तेन रसेन समृद्धान् कुरुतेतिभावः कीदृशा यूयं उशतीः इच्छावत्यः मातर इव ।

अयं भावः । यथा सस्नेहा मातरः स्वसंजातेः स्तनरसेन समृद्धान् कुर्वन्ति तथा यूयमपि कल्याणतमेन स्वरसेनास्मान् न समृद्धान् कुरुत इति प्रार्थना ।।

भाषा

हे जल । वा हे जल देवतागण, तुम पुत्रहिताभिलाषिणी माता के समान अपने परम कल्याणमय रसका भाजन हम को करो ।

इस में वात्सल्यमयी माता के समान अपने को पुष्ट करने की जल से प्रार्थना है ।

ओं तस्मा इति

हे आपः वो युष्माकं तस्मै तस्मिन् रसे अरं अलं पर्याप्तिं गमाम गच्छामः तत्र युष्मदीय रसविषये तृप्तिं गच्छाम इत्यर्थः । किञ्च तत्रैव रसविषये नो ऽस्मान् यूयं जनयथ तत्र सम्भोक्तृत्वेन अस्मान्

कल्पयतेत्यर्थः । तस्य कस्य यस्य रसस्य क्षयाय तये स्थाने जिन्वथ प्रीणयत आ ब्रह्मस्तंबपर्यन्तं जगदिति शेषः ।

भाषा

हे जल । वा हे जल देवतागण तुम्हारे उस रस में हम पर्याप्त को प्राप्त हों उसी रसमें तुम हमको भोक्ता रूप से कल्पना करो । जिस के स्थान में आ ब्रह्मस्तम्ब पर्यन्त जगत् को तुम प्रीणन अर्थात् तृप्त करते हो ।

इस में जल से यह प्रार्थना है कि जिस रस मे ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त जीव तृप्त होते हैं हम उस के भोक्ता हों और प्रचुर प्रमाण से हम उस रस को प्राप्त हों ।

ओं द्रुपदादिवेति । यजुर्वेद २० । २०

आपः मासां एनसः पापात् शुन्धन्तु पावयन्तु१ अत्र दृष्टान्तः । यथा द्रुपदात् वृक्ष मूलात् स्विन्नो घर्माक्तो जनः मुमुचानः मुक्तो भवति यथा स्नातः कृतस्नानः पुरुषः मलात् मुक्तो भवति यथा पवित्रेण आज्य संस्कार मन्त्रेण आज्ये घृतंपवित्रंभवति ।

१ शुन्ध शुद्धौ दिवादि =

तथा जलानिमां पावयन्तु " इति प्रार्थना "

भाषा

धूप में परिश्रम करने से पसीना जिस के आगये हैं वह पुरुष वृक्ष मूलकी छायामें बैठने से जैसे पसीने से मुक्त होता है। जिसने स्नान किया है वह जैसे कीच धूल आदि मल से मुक्त होता है। आज्य के संस्कारक वेद मन्त्रों से जैसे घी शुद्ध होता है ऐसे ही " जल " मुझे पाप से शुद्ध करें। अर्थात् मेरे पापों से मुझे मुक्त करदें।

ऋतञ्च सत्यंचेति

' ऋतंच सत्यं च ' इस मन्त्र का अर्थ आचमन प्रकरण में लिखा गया है॥

ओं अन्तश्चरसीति।

हे आपः त्वं अमृतं न प्राणत्यागं भवति यतः नतः यथा भूतं असि तथा रसः रसमय ज्योति प्रकाशरूपं असि अत एव रसरूपेण भूतानां स्थिरचरा णां अन्तश्चरसि गुहायां ब्रह्मांडे विश्वतः मुख असि त्वं यज्ञः त्वां विना यज्ञः न संपद्यते त्वं वषट्कारः यजमान रूपोऽसि त्वदाचमने नासमां

अमृतादि भोक्ता भवामीत्यप्सु प्रार्थना ॥

भाषा

हे जल । तुम अमृत रूप हो ❀ रस और ज्योति स्वरूप भी तुम ही हो । रस रूप से स्थावर जंगम जगत के अन्तः भीतर विचरते हो । इस ब्रह्मांड रूप गुहा में विश्वतोमुख' अर्थात् सब ओर तुम व्याप्त हो । तुम यज्ञ हो तुम ही " वषट्कार अर्थात यजमान रूप हो ,,

इस से जल में यह प्रार्थना है तुम्हारे आचमन से मैं अमृतरस, आदि का भोक्ता होऊं ॥

उद्वयं तमसः परि इति

वयं सूर्यं उद्गन्म उद्गच्छामः किं भूतं तमस उत्परि उपरि वर्त्तमानं पुनः कीदृशं स्वः स्वर्ग लोके उत्तरम् तारण स्वरूपं देवं द्योतमानम् उत्तमम् ज्योतिः अग्न्यादिषु प्रधानम् कथम्भूताःवयम् तन पश्यन्तः देवत्रा तेनैव सूर्य देवेन रक्षिताः भवावः

❀ अन्न बिना खाये कुछ काल जीवन रहता है पर बिना जल जीवन नहीं रह सकता इसी से जल को अमृत कहा है ।

भाषा

हम सूर्य देव का दर्शन करते हैं और उनही रक्षित होकर हम उनको प्राप्त होते हैं। हम सूर्य देव को प्राप्त होते हैं कि जो अन्धकार से अर्थात् परे वर्त्तमान हैं, और जो समस्त जगत निस्तार करते हैं, द्योतमान और सब ज्योति में श्रेष्ठ है।

ओं उदुत्यमिति।

त्यं तं सूर्यदेवं केतवः रश्मयः उद्वहंति किमर्थं दर्शनाय कस्य विश्वस्य किम्भूतं जातवेदसं तेजो विश्वप्रकाशनायतेजोमयं केतवः उद्वहन्तीति भावा

भाषा

समस्त जगत के प्रकाश करने के लिये रश्मि अर्थात् किरणें सूर्यदेव को ऊर्द्धलोक में वहन करते है अर्थात् ऊर्द्ध वर्त्ती सूर्यदेव किरणों से जगत के प्रकाश करते हैं।

ओं चित्रं देवाना मिति।

असौ सूर्यः उदगात् उदितोऽभवत्।

किंभूतः मित्रस्य वरुणस्य अग्नेश्चक्षुः पुनः किंभू देवानां अनीकम् मित्रादि देवातिरिक्तानामन्ये

देवानां समूह रूपः। कथमुदगात् चित्रं आश्चर्यं यथा भवति। उदित्यच स्वेन रश्मिजालेन द्यावा पृथवीश्चान्तरीक्षं स्वर्गं मर्त्याकाशं आप्राः आपूरितवान्। जगतः जङ्गमस्य तस्थुषः स्थावरस्य अयमेव सूर्यः आत्मा॥

अर्थ-समस्त देवताओं के समुदायरूप, मित्र वरुण और अग्नि के चक्षुस्वरूप सूर्य देव आश्चर्य रूप से उदय हुए हैं और अपनी किरणों से द्यावापृथिवी अन्तरीक्ष अर्थात् स्वर्ग मर्त्य और अकाश को पूर्ण किया है सूर्य जङ्गम और स्थावर की आत्मा है॥

ओं तच्चक्षुरिति।

देवानां हितं पुरस्तात् उच्चरत् उदितं शुक्रं प्रकाश बहुलम् तच्चक्षुः वयं शरदः शतं पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतं अदीनाः स्याम शतात् शरदः भूयश्च पश्याम इत्यादि सर्वं योज्यम्।

भाषा

देवताओं के बांछित सन्मुख उदित, प्रकाशबहुलचक्षु (जगत के प्रकाशक सूर्य) को हम सौ वर्ष तक जीवित रहें सौ वर्ष तक सुनैं सौ वर्ष तक बोलें

सौ वर्ष तक के जीवन में हम दीन न हों। सौ वर्ष ही उससे अधिक काल तक भी हम देखें सुनें जीवित रहें बोलें और दीनता न करनी पड़े।

इसका तात्पर्य यह है कि सौ वर्ष या उससे भी अधिक हमारा जीवन विना दैन्य के हो और आंखों में देखने की, कानों में सुनने की, वाणी से बोलने की शक्ति बनी रहै।

ओं तेजो सीति। यजुर्वेद अ० १ मं० ३१

हे गायत्रि! त्वं तेजोऽसि प्रकाश रूपातमो नाश कर्त्र्यसि शक्रं धर्मादीनांवीर्यं उत्पादन कारणं असि अमृतं अमृत रूपासि, नामप्रसिद्धौ, धामचतुर्दश भुवनानां निवासस्थानमसि देवानां प्रियं अभीष्ट अनाधृष्टं ब्रह्मादि देव गणैरपि दुर्बोधंदेवयजन असि परतत्वाधिष्टानरूपत्वात्॥

भाषा

हे गायत्रि तुम तेजरूप हो अज्ञान तम का नाश करती हो शुक्र रूप हो धर्मादिक का कारण हो अमृत रूप हो चतुर्दश भुवन की आधार हो देवताओं की प्रिय हो अनाधृष्ट देव यजन हो अथ

ब्रह्मादि देवगण भी तुम्हारा तत्व नहीं जान सक्ते हैं ऐसी देवयजन परमेश्वर की पूजन करने का अधिष्ठान हो ।

ओं गायत्र्यसि इति ।

एकं परं ब्रह्म प्राप्तिस्थानं यस्याः सा । द्वौ बन्ध मोक्षौ पदौ प्राप्ति कारकौ यस्याः सा । त्रयो वेदाः लोकाः देवा गुणाः वा पदाः स्थानानि यस्याः सा चत्वारो वेदाः धर्मार्थ काम मोक्षाः पदाः यस्याः सा । अपदी नहिकेनापिप्राप्तुं शक्यासि परतत्वरूपत्वात् अतएव ब्रह्मादिभिरपि पद्यसे प्राप्यसे तुरीयाय जाग्रदादि स्थानत्रयात् परं यद्रूपं तदात्मकासिप-दाय प्रलये ब्रह्मादीनां अपि निवासस्थान रूपासि दर्शताय ज्ञानात्मकतत्वाय रजसे रजसः तुभ्यं नमः असावदोमाप्रापत् असौत्वत् प्राप्ति विघ्न कर पाप्मा तस्य अदः त्वत् प्राप्ति बिघ्नकतृत्वं मा प्रापत् मां न प्राप्नोतु ।

"असावदोम् इति पाठे,, असौ ब्रह्मादि देव गण-युक्तःपरलोकःअदःस्थावर जङ्गमात्मकःलोकःओंप्रकृति पुरुषात्मकमेव न ततः पृथक् किमप्यस्तीति भावः॥

भाषा

हे गायत्री तुम एक पदी हो पूर्णानन्द पर त
के प्राप्ति का स्थान हो द्विपदी हो बन्ध मोक्ष दोनें
का पद रूप हो ※ त्रिपदी हो तीनों वेद तीनों दे
तीनों लोक, तीनों गुण तुम्हारे पद हैं चतुष्पदी।
चारों वेद धर्मार्थ काम मोक्ष तुम्हारे पद हैं। अप
हो अचिंत्य परतत्व तुम्हारा पद अर्थात् स्वरूप
तुरीय अर्थात् जाग्रत्स्वप्न सुषुप्ति से चौथा तुम्हा
स्वरूप है ज्ञान स्वरूप हो रज से परे हो तुम
नमस्कार है ॥

[असावदो माप्रपत्--का अर्थ] तुमको नमस्
करने से तुम्हारी प्राप्ति में विघ्न करनेवाला प
मुझे न प्राप्त हो अर्थात् तुम्हारे नमस्कार के प्रभ
से मैं निर्विघ्न तुमको प्राप्त होऊं।

※ बन्धको भवपाशेन भव पाशाच्च मोचकः।
एव स्मृतो विष्णुः विमुख जीवों के बन्धन का
सन्मुख जीवों के मुक्ति कारण एक परमेश्वर ही
परमेश्वर के गायत्री के अभेद से गायत्री को ब
मोक्ष का कारण कहा है।

[असावदोम्--का अर्थ] ब्रह्मादि देवगण युक्त परलोक और स्थावर जङ्गमात्मक यह लोक प्रकृति पुरुषात्मक है, प्रकृति पुरुष से भिन्न कुछ नहीं है१

अथ गायत्री व्याख्या

ओं तत्सवितुरिति । यजुर्वेद अ० ३ । मं०३५

ओं तत् "तं,, सवितुः "जगत् सृष्ट्यादि कारणस्य,, वरेण्यं "वरणीयं" वा सर्वोत्कृष्टम् भर्गः "तेजः परब्रह्मात्मकं ज्योतिः,,देवस्य द्योतमानस्य-वा-सृष्ट्यादिना क्रीडतः धीमहि ध्यायेम: वा-धारयेमः यः नः "अस्माकं,, धियः बुद्धिवृतिः प्रचोदयात् "प्रेरयति,,

एषा गायत्री व्याख्या आग्नेये १ पठ्यते गायत्युक्थानि शास्त्राणि भर्गं प्राणांस्तथैवच ।

ततस्मृतेयं गायत्री सावित्री यत एवसा । प्रकाशकत्वात् सवितुः वाग्रूपत्वात् सरस्वती । तज्ज्योतिः

---

१ ओंकार को पुरुष रूप और गायत्री को प्रकृति रूप माना है अतः प्रकृति पुरुषात्मक जगत् गायत्री ओंकार से भिन्न नहीं है यह गायत्री महिमा है ।

१ अग्निपुराण में यह गायत्री का भाष्य है हमने उसी की भाषा की है ।

परमं ब्रह्म भर्गस्तेजो यतः स्मृतः भर्गस्यात् भ्राज
इति वहुलं छंदसीरितम् । वरेण्यं सर्वतेजोभ्यःश्रेष्ठ
वै परमं पदां स्वर्गापवर्ग कामैर्वाखरणीयं सदैवहि
वृणोते वरणार्थत्वात् जाग्रत् स्वप्नादि वर्जितम्
नित्य शुद्धं बुद्ध मेकं नित्यं भर्गमधीश्वरं । अहंब्रह्म
परं ज्योतिर्ध्यायेमहि विमुक्तये । तज्ज्योतिर्भगवान्
विष्णुर्जगज्जन्मादि कारणम् । शिवं केचिद्रुद्रं तिस्र
शक्ति रूपं वदतिचकेचित् सूर्यं केचिदग्निं देवता
न्यग्नि होत्रिणः । अग्न्यादि रूपी विष्णुर्हि वेदादौ
ब्रह्म गीयते । दधाते वाधीमहीति ननसा धारयेमहि
नोस्माकं यच्चभर्गस्तत सर्वेषांप्राणिनांधियः । चोद
यात् प्रेरयात् बुद्धिं भोक्तृणां सर्व कर्मसु । दृष्टादृष्ट
विपाकेषु विष्णुः सूर्यादि रूपभाक् । ईश्वर प्रेरितो
गच्छेत् स्वर्गं वस्वभ्रमेववा । ईशावस्य मिदं सर्वं
महदादि जगद्धरिः । सर्गाद्यैः क्रीडते देवो यो हंसः
पुरुषः प्रभुः ।। ध्यानेन पुरुषो यश्च द्रष्टव्यःसूर्यमंडले
। सत्यं सदा शिवं ब्रह्म विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥

भाषा

[गायत्री शब्द का अर्थ] उक्थों को, शास्त्रों को
भर्गको, और प्राणोंको, गान करती है, इस से गायत्री
है। [सावित्री शब्द का अर्थ] सविता को प्रकाश
करती इस से सावित्री है । वाणीरूपा है इस से

सरस्वती है । संध्योपासन में , भर्ग , को
धानता है इस से यहां वही अर्थ लिखते हैं ।
तत्, शब्द का अर्थ 'वह' परब्रह्मरूप ज्योति है
योंकि यहां 'भर्ग' शब्द है 'भर्ग, नाम तेज का है
ाजते इतिभर्गः ❀ वरेण्य, शब्दका अर्थ है सब से
ष्ठ परमपद, अथवा वरेण्य, उसे कहते हैं जिसे
स्वर्ग मुक्ति आदि की बांछा करने वाले वरण करें
क्योंकि वरेण्य, पद वृञ् ❀ धातु से भी बनता है ।

वह भर्ग वरेण्य, है अर्थात् नित्य शुद्धबुद्धएक
और सब का अधीश्वर है । 'अहंब्रह्मपरं' ज्योतिः
मैं ब्रह्मस्वरूप का परम ज्योति हूं अर्थात् ब्रह्म
जो चित् जगत् के सूर्य के समान हैं मैं जीव भी
उस के किरण के समान "चित्करण भिन्ना भिन्ना❀

❀टुभ्राजृ दीप्तौ भ्वादिः

वृञ् संवरणे स्वादिः

❀ इस का तात्पर्य यह हैं कि ब्रह्म और जीव
में अचिन्त्य भेदा भेद हैं जैसा सूर्य की किरणे सूर्य
से भिन्न हैं क्योंकि सूर्य आकाश में है और किरणें
हमारे घर में आपड़ती हैं इसी भांति भगवान्
चिदानन्दमय नित्यधाममय हैं और जीव माया

सृष्टि दुःखमय संसारमय पड़ा है। पर जैसे सूर्य की किरणें सूर्य के विना स्वतन्त्र सत्ता नहीं रखती हैं ऐसे ही श्री भगवान् के आश्रय विना जीवों की कोई सत्ता नहीं है इस वैदिक सिद्धान्त का नाम "अचिन्त्य भेदा भेद इसकी स्फूर्ति जीव को बनी रहै उसी निमित्त सूर्य का उपस्थान और सावित्री जप करते हैं। यही चैतन्य मत वा वैष्णव फिला-सोफी है। तत्वहो अतएव मुक्तिकीकामनाकर"उस" भर्ग को हम ध्यान करते हैं। वह भर्ग क्या है; वह जगतके सृष्टि स्थितिप्रलयका कारण भगवान्विष्णु कोई कहते हैं गायत्री अर्थ "शिव" है कोई कहते हैं "शक्ति" कोई कहते हैं "सूर्य" है कोई कहते हैं "अग्नि"। (इस विषय के विवादकी मीमांसा करतेहैं) अग्निहोत्रीगण इसी भांतिअनेक देवताओं का वर्णन करतेहैं किन्तु वेद आदिक शास्त्रों में ये सब अग्निशिव आदिक उसी विष्णुके रूपनाम कहे जाते हैं इससे सर्वान्तर्यामी वही सब का मूल है धीमहि* शब्द का दूसरा अर्थ धारण करना भी

* डुधाञ् धारण पोषणयोः जुहोत्यादिः।

हो सकता है जिसका भाव यह है कि हम उस भर्ग को मन में धारण करें ॥

"य" जो भर्ग हम सब भोक्ता जीवों की बुद्धि को "दृष्टफल" इस लोक के व्यवहार "अदृष्टफल" के पर लोक के साधन कर्मोंमें "प्रचोदयात्" प्रेरणा करता है। उसी की प्रेरणासे कर्म कर हमलोग शुभाऽशुभ प्राप्त होतेहैं अर्थात् स्वर्ग मुक्ति आदिक पाते हैं। "देव" शब्द का अर्थहै क्रीड़ा करनेवाला। अर्थात् वही श्री भगवान सूर्यादि रूप से और महदादि जगत् रूप से क्रीड़ा करता है १ उसी हरि भगवान्का सूर्य मंडलमें २ ध्यान करना चाहिये। वही सत्य नित्य मंगल व्यापक श्रीभगवानका परम पद है ५

* श्रीभगवान् के दो रूप की क्रीड़ा है प्रकृति की क्रीड़ा जड़जगत्है चित्शक्तिकी क्रीड़ा नित्यलीला है

* भगवानके ध्यान पूजन करनेके ये सात अधिष्ठान हैं अर्चायां स्थंडिले ऽग्नौ वा सूर्ये वाप्सु हृदि द्विजे। "मूर्ति", स्थंडिल अर्थात् वेदि अग्नि सूर्य जल हृदय ब्राह्मण। इनमें पृथक् २ विधान से पूजन किया जाता है सूर्येतु विद्या त्रय्या, सूर्य में त्रयी के मन्त्रों से उपस्थान ही ध्यान पूजन है।

इस गायत्री की व्याख्या का भावार्थ यह है कि जो परम पुरुष भगवान् समस्त जगत को उत्पन्न करते हैं और इस जगत् में अन्तर्यामी रूप से सब का नियम करते हैं और यह सब जिनकी क्रीड़ा है उनका सब से श्रेष्ठ और सबके वरने योग्य जो तेजोमय रूप है उसका हम ध्यान करें कि वह हमारी बुद्धि को सत्कर्म और अपनी उपासना में प्रेरणा करे कि जिससे हम उनकी कृपा के पात्र हों साधन और साध्य दोनों उन्हीं की कृपा से होते हैं जीव का साध्य कुछ नहीं है केवल उसी प्रभु की कृपा पर सब निर्भर हैं।

सप्तव्याहृती और गायत्री के शिरोमन्त्र का अर्थ भी यहीं लिखते हैं।

ओं भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम् इति

ओंनामा भगवान् विष्णु रधिकोच्च गुणात्वतः पूर्णः। भुवः लक्ष्म्याः वरः। स्वः अनन्त सुखः। महः सर्व पूज्यः जनः सृष्टिकर्ता तपः आलोचन वान् सत्यं उत्तमानन्द ज्ञानवान्॥

भाषा

सब से अधिक उच्च गुण होने से "ओं,, भगवान् ।
नाम है पूर्ण होने से "भु,, नाम है । लक्ष्मी पति
ने से "भुवः,," नाम है । अनन्त सुखरूप होने से
स्वः,, नाम है । सर्व पूज्य होने के कारण "महः,,
म है सृष्टिकर्ता होने के कारण "जनः,, नाम है ।
व के आलोचन कर्ता अर्थात् द्रष्टा होने से "तपः,,
म है । उत्तम आनन्द और ज्ञान युक्त हैं इससे
सत्यम्,, नाम है ।

ओं आपो ज्योतिरिति ।

आपालना दायः वहु रूपत्वात् स्त्रीरूपत्वात्
द्विशेषणम् ज्योतिः प्रकाश रूपम् रसः श्रेष्ठम् अमृतं
मदात् । ब्रह्म सकल गुण पूर्णत्वात् वृहत्तमम् ।

भाषा

(यह गायत्री का शिरोमन्त्र गायत्री के ही साथ
न्वित होता है)

ये सब "तत्,, शब्द के विशेषण हैं । कैसा है वह
रमेश्वर "आप,, है जगत् का पालन करता है । ज्योति
है प्रकाश रूप है रस है सर्व श्रेष्ठ रसरूप है अमृत

है मोक्ष दाता है। ब्रह्म है सर्व गुणयुक्त होने से सबसे बृहत्तम अर्थात् बड़ा है। [भूर्भुवः स्वः इनका अर्थ प्रथम लिख चुके हैं]

इति गायत्री व्याख्या

स्वयंभू रसीति

हे सूर्य त्वं स्वयं भूः श्रेष्ठः प्रशस्य तमः रश्मि मण्डल शरीरा भिमानी असि। त्वंवर्चोदा असिवर्चो मेदेहि। अहं सूर्यस्य आवर्तनं अनुसृत्य आवर्तं प्रादक्षिण्येन आवर्तं करोमि॥

भाषा

हे सूर्य तुम स्वयं भू हो श्रेष्ठ रश्मि सर्वोत्तम प्रकाशमय मण्डल के अभिमानी अर्थात् भोक्ता हो तुम "वर्चः" तेज के देनेवाले हो मुझे तेज दो। मैं सूर्य के आवर्तन [घूमने] का अनुकरण कर सूर्य का आवर्तन करता हूं। अर्थात् प्रदक्षिणा करता हूं।

देवा गातु विदः इति

हे देवाः गातु विदः यज्ञ विदः गातुं यज्ञं वित्त्वा पूर्णं ज्ञाता गातुं भविष्यन्तं यज्ञं इतःपुनराग… हे मनसस्पते अस्मान् मनों नियंतः परमात…

इमं देव यज्ञं गायत्री जपरूपं परमेश्वर पूजनम् वायौ निधेहि तुभ्यं स्वाहा सुहुतमस्तु ।

भाषा

हे यज्ञ के वेत्ता (जाननेवाले) देवगण इस यज्ञ को पूर्ण जानकर आप भविष्य यज्ञमें आवें (अर्थात् अब आप पधारें) हे मनके प्रेरक परमात्मन् आप इस यज्ञ को (गायत्री जप रूप परमेश्वरोपासन को) वायु को धारण करै अर्थात् इसका फल वायु में मिलकर हमारे लिये नित्य और व्यापक हो स्वाहा (यह हमारी प्रार्थना आपको सुन्दर उक्ति की गई हो)

इति

काशीस्थ पण्डितों की व्यवस्था

श्रीगणेशायनमः

ऊरूतदस्य यद्वैश्य इत्यादि पुरुष सूक्त श्रुत्य
प्रतिपादित सद्भाव भाजो ऽमी तृतीयवर्णत्वेनाव
रिता वैश्याःस्वाजात्युक्तोपनयनादिसं स्कारैःसंस्क
नवा ! उपनयाद्य भावेऽपि तेषां पर्याप्तं द्विजत्वं
वा ? ॥ स्ववर्णो दितो पनयन का लातिक्रमे ऽ
उपनयनादि संस्कारो भवितु मर्हति नवा । ब्रात
संस्कार्या नवा ? वैश्यानां ब्रह्मगायत्र्युपदेशः सम
तिन वेति च जिज्ञासायम् क्रमेणोत्तरम् ।

(१) अष्टवर्षं ब्राह्मण मुपनयेद् गर्भा ष्टमे
एकादश वर्षं राज्यं द्वादशवर्षं वैश्येम् इति श्रुत
स्पष्टमेवब्राह्मणानामिव तृतीयवर्णत्वेनावधारित
वैश्यानामुपनेयत्वं, एवमेव तु मनुयाज्ञवल्क्यावन्व
साताम् । गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायन
गर्भा दे कादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशेविशः [मनु०
[२ ०अ श्लोक० ३६] गर्भाऽष्ट मेऽष्टमेवाब्दे ।

ब्राह्मण स्यो पनायनम् । राज्ञा मेकादशे सैके वि
शामेकेयथाकुलम [याज्ञ० अ० १ श्लोक० १४]

(२) जन्मना ब्राह्मण क्षत्रियविशः उपनयन वि-रहे न पर्याप्ता द्विजाः अपितु संस्कारद्वारेणैव तेषां पर्याप्तं द्विजत्वं भवति अत एवतु " जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते,, इति स्मृति रपिसंस्का रेणैव साद्गुण्यं प्रति पादयति। एवमेवतु "तेनतुल्यम् ० इति सूत्रस्य... " तपः श्रुतंचयोनिश्च एतद् ब्राह्मण कारकम् ॥ तपः श्रुताभ्यां यो हीनो जा ति ब्राह्मण एव सः ॥ इति महाभाष्यं संस्काराद्य भावे जाति ब्राह्मणादिक मनुमनुते ॥ तस्मात् अ संस्कृता वैश्यादिजत्व प्रयुक्त कार्येषु सर्वथा ऽनधि-कारिण इति शास्त्र सिद्धान्तः

(३) ब्राह्मण क्षत्रिय विशः स्वस्ववर्णं नियत मुख्य गौणकालोल्लङ्घने व्रात्याः सन्तोऽपि आपस्तं बोक्त प्रायश्चित्तमनुष्ठाय यथायथमध्यापनादिया श्या व्यवहरणीयाश्च भवन्तीति शास्त्रविदां सम्मतिः॥ तथाहि । अतिक्रान्ते सावित्र्या मुद्रंकाले ऋतु त्रैवि-दिक ब्रह्मचर्यं चरेदथोपययनं ततः संवत्सर मद को पस्पर्शन मथाध्याप्यः । यस्य पिता पितामह इत्य नुपेतौ स्यातां ते ब्रह्म हसंस्तुताः तेषामभ्या गमनं भोजनं विवाहमितिचि वर्जयेत् तेषामिच्छातांप्राय श्चित्तं यथा प्रथमातिक्रमे ऋतुरेवं संवत्सरः अथापन

यन्ततदकोपस्पर्शनं प्रतिपुरुषं संख्याय संवत्सरा
यावन्तोऽनुपेतः स्युः समभिः पावमानीभिर्यदन्ति
यच्च दूरके इत्येताभिर्यज्ञ पवित्रेण साम पवित्रे
गिरसेनेति अपि वा व्याहृतिभिः अथाध्या
इत्येवमादि। सूत्रार्थस्तु तत्रा तत्राकरग्रंथेषु स्प
इति तदर्थो न प्रयत्यते ॥

कलौ क्षत्रियवैश्याद्य भाव वर्णनं तु केवलं साहसिक
निबन्धनम् तत्र २ महाभारत विष्णुपुराण श्रीम
गवत· स्कंदपुराणादिषु कलावपि तत्सद्भाव
सुष्पष्टमभिहितत्वात् कलिधर्म निरूपणे दत्तपा
प्रवृत्तासु पाराशरीषु स्मृतिष्वपि क्षत्रिय वैश्यं
सद्भावस्य सुस्पष्टमभिहितत्वाच्च ॥

यथाहि। "चातुर्वर्ण्यं समाचारं शृणुध्वं मुनिपुङ्ग
इत्युपक्रम्य " क्षत्रियोवापिवैश्यो वा क्रियाव
शुचिव्रती॥ तद्गृहेषु द्विजैर्भोज्यंहव्यकव्येषुनित्य
इत्यन्तेनतेषां गृहेब्राह्मणानां भोजनादि समाचा
णामाम्नातम् ॥

(४) चरमप्रश्नस्योत्तरम् । त्रिष्टुभं राजन्य
जगतीं वैश्यस्य सर्वेषां वा गायत्रीम् । राजन्य
क्षत्रियस्य त्रिष्टुभं त्रिष्टुप्छन्दो यस्याः सा त्रिष्टु

तां त्रिष्टुभं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात् इति सावित्रीम् । जगती छन्दोयस्याःऋचःसा जगतीतांजगतीम् 'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्नआसुव,, इति सावित्रीम् वैश्यस्य विशः सावित्रींब्रूयादित्य-नुच्यते । सर्वेषां वा गायत्रीं यद्वा सर्वेषां ब्राह्मण क्षत्रियविशां गायत्रीमेव गायत्रीछन्दस्कामेव सावित्री सवितृदेवताकां ... तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् इति सकलवेदशा-खाम्नातामृचमनुब्रूयात् ॥

एवञ्च वेदाध्ययनाधिकारिणां क्षत्रियवैश्यानां निरुक्त पारस्करगृह्य सूत्रतदर्थ प्रतिपादक हरिहर भाष्य प्रामाण्येनच ब्रह्म गायत्र्युपदेशो धर्म्य इति शास्त्र सिद्धान्तः ॥

श्री संवत् १९५५ मि० माघ कृष्ण प्रतिपत् भृगौ ॥

महामहोपाध्याय कैलाशचन्द्र शर्मणः सम्मतिः

पं० शिभवराम शर्मा, महामहोपाध्याय स्वामी राम मिश्र शास्त्री, श्री महादेव स्मृति तीर्थः,सम्मतिरत्रार्थे घनश्याम शर्मणः, सम्मतिः भागवताचार्यस्य च, सम्मतिरत्रार्थे जगन्नाथ वेदान्तिनः,तर्कतीर्थोपनामक

श्री सुरेन्द्रलाल शर्मा । तत्त्वरत्नोपनामक श्री प्रिय
नाथ शर्मा । श्री दीनानाथ भट्टाचार्य । श्रीगणेश
चन्द्र शर्मा । श्री पीताम्बर देव शर्मा । सांङ्ग
र्थोपाधिकेन द्राविणोयाऽहं लक्ष्मणशास्त्रिणा,सम्मा
यमर्थः । सम्मतिरत्रार्थे ज्यो० हरि शंकर शर्मणः
सम्मतिरेतदर्थे ज्यो० शङ्करदत्तशर्मणः । सम्मतिरे
दर्थे मालवीय वैजनाथ शर्मणः सम्मतिरत्रार्थे गङ्गा
धर शास्त्रिणोग्निहोत्रिणः । सम्मतिरत्र भवानीद
दीक्षितस्य । सम्मतिरत्रमालवीयोपनामक बालमु
कुन्द शर्मणः। सम्मतिरत्र हरिशङ्करस्य। सम्मतिरत्रार्थे
रामदिहनशर्मणः । वैजनाथ दी० । लक्ष्मन भ०
श्री शङ्कर शास्त्री । श्री सङ्गमलाल शर्मा । सम्मति
रत्रार्थे पं० हरिहरदत्त शर्मणः सममंस्तामुमर्थं भार्ग
रथीप्रसाद शर्मा । अयोध्यानाथ शर्मा सुमर्थं सम
मंस्त । संमनुतेमुमर्थं मुकुन्द शास्त्री । पं० विष्णु
दत्त शर्मा मुमर्थं मन्यते । असंस्कृतस्य वैश्यस्य चतुर्वि
शत्यर्षादूर्ध्वस्य व्रात्यस्तोमेनोपनयनं यत्रसम्मति
ऋषिप्रसादशर्मणः । झोपनामकश्रीकांतस्यापिसंमति
सीतारामशास्त्री । गोपालभट्ट भट्ट बद्रीनाथ शर्मा
गौरीनाथ शास्त्री । अम्बादास शास्त्री । अत्रार्थे

सम्मतः ब्रजमोहन पाठकः । अत्रार्थे सम्मतः रघुनाथ शर्मा । शास्त्रोदित प्रायश्चित्तमनुष्ठाय वैदुयोपनयन करणे सम्मतिर्जयदेवस्य । उपनयने महिमादत्त पाठकस्य सम्मतिः । पं० विन्ध्येश्वरीप्रसाद शर्मा । पं० मोलकराम शर्मा । अनन्तराम शर्माऽपि पं० बालं भट्ट शर्मा भोकरकरोपाधि धर्माधिकारी पं० राधाराम शर्मा । प्रयागदत्त शर्मा । मा० हरिशर्मणः । पं० दुर्गाशङ्कर पाठकः ॥ सम्मनुते अमुमर्थं द्वारिकादत्त शर्मा । पद्मनाभ शास्त्री । मक्खनलाल शर्मणः ॥

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

पुरुष सूक्त श्रुति से योग्य निश्चित किये ग
तीसरे वर्ण यह वैश्य लोग अपने जाति के अनुसा
कहे हुये संस्कारों से संस्कृत किये जासक्ते हैं
नहीं ?उपनयनादि करने से भी द्विज कहे जास
हैं या नहीं ? व्रात्यों का संस्कार होसक्ता है य
नहीं ? वैश्य को ब्रह्म गायत्री का उपदेश करन
उचित है या नहीं ? इन बातोंके उत्तर क्रमशः ये

अष्टवर्षम् ब्राह्मणमुपनयेद्गर्भाष्टमे वा।
एकविंशंवर्षंराजन्यं द्वादशवर्षंवैश्यम्॥

यानी गर्भ से आठवें वर्ष या आठवें ही
ब्राह्मण का व ग्यारहवें में क्षत्रिय का व बारहवें
वैश्य का उपनयन करे-इस श्रुति से ब्राह्मणों की तर
तीसरे वर्ण इन वैश्य काभी उपनयन करना स्पष्ट
प्रतीत होता है, ऐसे ही मनु याज्ञवल्क्य भी म
नते हैं, जैसे-

गर्भाष्टमे ऽब्दे कुर्वीत् ब्राह्मणस्योपनायनम्

गर्भादेकादशेराज्ञां गर्भात्तु द्वादशे विशः
(मनु० अ० २ श्लो० ३६)

गर्भाष्टमेऽष्टमेवाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
राज्ञामेकादशेसैके विशामेके यथा कुलम्
(याज्ञ० अ० १ श्लो० १४)

अर्थ—गर्भाष्टम वर्ष में ब्राह्मण का उपनयन करे गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय का व गर्भसे बारवें वैश्य का उपनयन करे- (मनु०) गर्भाष्टमवर्ष या अष्टम में ब्राह्मण को उपनीत करे क्षत्रिय का ग्यारहमें और बारहमें वैश्यका उपनयन करें कोई आचार्यकुल के अनुकूल निर्णय मानते हैं (याज्ञ)

(२) उपनयन करने से केवल जन्मही से ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य पूर्ण द्विज नहीं हैं किन्तु संस्कार से ही उसको द्विजता मिल सक्ती है इसी से

जन्मनाजायतेशूद्रःसंस्काराद् द्विजउच्यते ।

यानी जन्म से शूद्र उत्पन्न होते हैं संस्कार से द्विज कहे जाते हैं यह स्मृति भी संस्कार ही से द्विजत्व प्रतिपादन करती है, ऐसेहीतेनतुल्यं इस सूत्र पर

तपःश्रुतंच योनिश्च एतद्ब्राह्मण कारकम् ।
तपश्श्रुताभ्यां योहीनो जातिब्राह्मण एवसः

यानी तपस्या, शास्त्र, उत्पत्ति ये ब्राह्मण के उत्पादक हैं जो तपस्या शास्त्र से हीन हैं वे शब्द मात्र के ब्राह्मण हैं यह भाष्य भी संस्कारादि के अभाव में जातिमें ब्राह्मणादिक मानते हैं। इस से बिना संस्कार का वैश्य द्विजत्व निमित्त कार्य में सर्वथा अधिकारी नहीं है यह शास्त्र सिद्धान्त है। (३) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अपने २ उपनयन के नियत काल मुख्य गौण दोनो बीतने से व्रात्य हो जाने पर भी आपस्तम्बोक्त प्रायश्चित करके अध्यापनादि योग्य व व्यवहार योग्य होजाते हैं यह शास्त्रों की सम्मति है ॥

तथाहि-अतिक्रान्ते सावित्र्याः कालेऋतु त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्य्यं चरेदथोपनयनं ततः संवत्सरमुदकोपस्पर्शनमथाध्याप्यः यस्य पिता पितामह इत्यनुपेतो स्यातां ते ब्रह्महसंस्तुताः। तेषामभ्यागमनं भोजनं विवाहं

च वर्जयेत् तेषामिच्छतांप्रायश्चित्तं यथा प्रथमातिक्रमे ऋतुरेवं संवत्सरे अथोपनयनम् ततउदकोपस्पर्शनं प्रतिपुरुषं संख्याय संवत्सरान् यावन्तोऽनुपेताः स्युः सप्तभिः पावमानीभिर्यदन्तिके यच्च दूरके इत्येताभिर्यज्ञपवित्रेण साम पवित्रणाङ्गिरसेनेति अपिवाव्याहृतिभिःअथाध्याप्य इत्येवमादि

अर्थ-इसका व्रात्यसंस्कार मीमांसा में स्पष्ट है। कलि में क्षत्रिय वैश्य नहीं है यह कहना केवल साहस है क्योंकि महाभारत, विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत, स्कन्दपुराणादि में क्षत्रिय वैश्य की स्थिति कलि में थी स्पष्ट ही कही है कलि के धर्म निरूपणावसर में पाराशरीस्मृत में भी वैश्य, क्षत्रिय का वर्तमानत्व स्पष्ट ही कहा है जैसे

चातुर्वर्ण्यसमाचारं शृणुध्वम्मुनिसत्तमाः ।

यानी हे मुनीश्वरों ! चारों वर्ण का आचार सुनो ऐसे आरम्भ करके ।

क्षत्रियोवापि वैश्योवा क्रियावन्तौ शुचिव्रतौ
तद्गृहेषु द्विजैर्भोज्यं हव्यकव्येषुनित्यशः ।

यानी क्षत्रिय या वैश्य क्रियावान् और शुचिव्र
होतो उसके गृह में ब्राह्मण को हव्य, कव्य सब
भोजन करना उचित है । इत्यादि से उनके गृह
ब्राह्मणों का भोजनादि समाचार माना गया है

(४) अन्त्य प्रश्न का उत्तर

त्रिष्टुभं राजन्यस्य जगतींवैश्यस्य सर्वेषांव
गायत्रीम् ॥ यानी क्षत्रिय का त्रिष्टुप्छन्द वाल

तत् सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि
धियोयोनः प्रचोदयात् ॥

इस सावित्री को व वैश्यकी जगतीछन्द वाल

विश्वानिदेव सवितुर्दुरितानि परासुव यद्
भद्रन्तन्न आसुव

इस सावित्री को देवे, यद्वा सब किसी ब्राह्मण
क्षत्रिय वैश्य को गायत्री छंदवाली सावित्री
तत्सवितुर्वरेण्यंभर्गोदेवस्य धीमहि धियो
योनः प्रचोदयात् ॥

इस ऋक् का उपदेश देवे। इससे वेद के अध्ययनाधिकारी क्षत्रिय वैश्यों को पारस्कर गृह्यसूत्र व उसके अर्थ प्रतिपादक हरिहरभाष्य के प्रमाण से ब्रह्म गायत्रीकाउपदेशधर्मयुक्तहैयहशास्त्र सिद्धान्तहै॥

इति॥

श्रीः ।

पञ्चमहायज्ञाः

(भूमिका)

श्रीमान् पूज्यपाद महर्षिगणों ने जो जो बातें परोपकार के लिये लिखी हैं वे सब सत्य हैं। जो मनुष्य उनके दिखाये पथ से चलते हैं वे इस लोक तथा परलोक में सुखी होते हैं। मनुष्य मात्र को उचित है कि वह सब पापों से बचता हुआ गृहस्थाश्रम का निर्वाह करे। जो गृहस्थ अत्यन्त सावधानीसे गृहस्थाश्रममें रहतेहैं वे भी पांचों पापों से कभी नहीं बच सकते। इस कारण धर्मशास्त्र जानने वाले आचार्यों ने गृहस्थ को पञ्चयज्ञ करने की आज्ञा दी है।

मनु भगवान् लिखते हैं—

पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः
कण्डनी चोदकुम्भश्च, वध्यते यास्तु वाहयन्
तासांक्रमेण सर्वासां,निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः
पञ्चक्लृप्तामहायज्ञाः प्रत्यहंगृहमेधिनाम्।
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्
होमो दैवो,वलिर्भौतो,नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्
पञ्चैतान्यो महायज्ञान् ,नहापयतिशक्तित
सगृहेपि वसन्नित्यं सूनादोषै र्न लिप्यते।

(अर्थ) चूल्हा, ऊखल मूसल, चक्की, बुहारी और जल का घड़ा इन पांचों वस्तुओं से पांच पा गृहस्थ के घर में रोज़ होते हैं। इन पांचों पापों को छुड़ाने के लिये गृहस्थ को रोज़ पञ्चयज्ञ करना चाहिये। उन यज्ञों के नाम ये हैं। ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, और नृयज्ञ। वेदपाठ को ब्रह्मयज्ञ, तर्पण को पितृयज्ञ, होम को देवयज्ञ, बलि को भूतयज्ञ, और अतिथि पूजा को नृयज्ञ कहते हैं जो मनुष्य इन पांचों महायज्ञों को करता है वह

गृहस्थ होने पर भी इन पांचों पापों से बचा रहता है अर्थात् ये पांचों पाप उस गृहस्थ को नहीं होते जो रोज़ पञ्चयज्ञ करता है।

गृहस्थाश्रम सब आश्रमों से बड़ा है। कारण यह कि ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी भी गृहस्थ ही के सहारे अपना निर्वाह करते हैं।

भगवान् मनु ने लिखा है।

यथावायुं समाश्रित्य . वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य,वर्त्तन्ते सर्वआश्रमाः॥
यस्मात्त्रयो ष्याश्रमिणो , ज्ञानेना न्नेन
चान्वहम्। गृहस्थेनैव धार्यन्ते , तस्माज्
ज्येष्ठाश्रमोगृही॥ ऋषयः पितरो देवा ,
भूतान्यतिथयस्तथा। आशासते कुटुम्बि-
भ्य 'स्तेभ्यः कार्यं विजानता॥ स्वाध्या-
येनार्चयेतर्षीन् , होमैर्देवान् यथाविधि।
पितॄन् श्राद्धैश्च नॄनन्नै र्भूतानिबलिकर्मणा॥

[अर्थात्] जिस तरह वायु के सहारे सब प्राणी

जीते हैं उसी तरह गृहस्थ के सहारे सब प्राणी जीते हैं चारों आश्रम इसी के सहारे ठहरे हैं। इस कारण सब आश्रमों [ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ, और सन्यस्त] से बड़ा गृहस्थाश्रम ही है। ऋषि, पितर देवता, भूत तथा अतिथि गृहस्थ ही के अन्न से पलते हैं इस कारण गृहस्थ को उचित है कि वह सर्वदा पाठ से ऋषियों को, होम से देवताओं को श्राद्ध तथा तर्पण से पितरों को, अन्नसे मनुष्यों को और बलि से भूतों को तृप्त करे।

जो मनुष्य सदा व्यवहार के कामों में लिपटे रहते हैं उन्हें भी उचित है कि पञ्च यज्ञ नित्य करे। हां जिन्हें बहुत समय मिले वे नित्य कर्म विस्तार के साथ करें। और जिन्हें कम समय मिले वह संक्षेप [थोड़े] में करलें। किंतु नित्य कर्म करे अवश्य। शास्त्रों की आज्ञा है " अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः " [नहीं करने से थोड़ा करना अच्छा है]॥

पाठ १ होम २ तर्पण ३ बलि वैश्यदेव ४ और अतिथि सत्कार ५ यही पांचों "महा-यज्ञ" कहलाते हैं

नित्य कर्मों में सब से पहले संध्या करना उचित है उसके बाद इन पांचों के क्रम में कई प्रकार की सम्मति है। परन्तु साधारण क्रम यह है कि पाठ। होम, तर्पण, वैश्व देव बलि और अतिथि सत्कार पाठ यह है ......

अथ ब्रह्मयज्ञः

ब्रह्मयज्ञ का यह क्रम है। हस्त पाद प्रक्षालन कर दो बेर आचमन कर कुशा के आसन पर बैठ कर प्राणायाम कर वाम पाद पर दक्षिण पाद धर कर वाम हस्त पर दक्षिण हस्त धर कर प्रथम इस प्रकार से तीन बेर गायत्री बोले। [प्रथम पादशः। फिर अर्द्धर्चशः। फिर ऋक्शः] जैसा विच्छेद देकर नीचे लिखी है।

१— ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं। भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्

२— ओं तत्सवितु र्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात्॥

३— ओं तत्सवितु र्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात्॥

तदनन्तर चारों वेदों के मंत्र ब्राह्मण उपनिषद् । तथा

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः ज्योतिष [षडंग] निघंटु पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, दैवी मीमांसा के कुछ ग्रंथ का पाठ करे । इन का क्रम निम्नलिखित है ।

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णु विचक्रमे पृथिव्याः सप्त धामभिः

(ऋग्वेद १ मंत्र २२ सू० १६ मंत्र)

वाक्यार्थ—विष्णु ने जिस हेतु से गायत्री प्रभृति सात छन्दोंसे पृथिवी का आक्रमण किया है, विद्वान जन, उस हेतु के जानने वाले वैष्णवाचार्य्य गण उसी हेतु से हमारी रक्षा करें ।

भावार्थ—जीवों के कल्याण ही हेतु श्री विष्णु भगवान ने गायत्री आदिक छन्दों के साथ इस पृथिवी में विहार किया है वैष्णवाचार्य्य गण उसी भगवान की लीला कथा शास्त्रोपदेश से जीवों की रक्षा करें अर्थात

उनके पाप निवारण कर उनको प्रभु की शरण कर उद्धार करें ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रता-
नि पस्पशे इन्द्रस्य युज्यः सखा ।

(यजुर्वेद ६ अध्याय ४ मन्त्र)

वाक्यार्थ—विष्णु के कर्म देखो जिन कर्मों से जब व्रतों को प्राप्त होता है । विष्णु इन्द्र का योग्य सखा है ।

भावार्थ-विष्णु के सृष्टि पालन नियमन आदि कर्मों को देखो कैसे आश्चर्य्य हैं जिन से जीव स्वतः अपने साधन के फल को आप प्राप्त होजाता है । यह मत जानना कि इन्द्रादिक देवता कर्म का फल देकर जगत् का नियमन करते हैं विष्णु ही इन्द्र का योग्य सखा है । विष्णु की शक्ति ही से इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, जगत् का कार्य्य करते हैं । वही एक सर्वेश्वर सर्व नियन्ता है ।

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे
पदं स मूढ मस्य पांसुरे ।

(सामवेद १ अध्याय ३ प्र पा. २ दशति ९ मन्त्र

वाक्यार्थ-विष्णु भगवान ने इस समस्त जगत् को विक्रमण किया है। अपना पद रूप तीन प्रकार से धरा है। उसके पाद स्थान में सब जगत् अन्तर्भूत है।

भावार्थ—विष्णु भगवान् जगत् में ज्ञान, योग भक्ति, इन तीन साधन से ब्रह्म परमात्मा, भगवान् तीन रूप से उसे लब्ध होते हैं। यह समस्त जगत् उनके चरणों में है अर्थात् ब्रह्मा से स्तंब पर्यन्त सब स्थावर जंगम जीव मय जगत् उन्हीं के आश्रय से है वही सर्वाधार सर्व पूज्य है।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्। [अथर्ववेद]

वाक्यार्थ—पुत्र पिता का अनुव्रत हो। माता से समान मनवाला हो। स्त्री पति से मीठी और सुखमयी वाणी बोलै।

भावार्थ— वैदिक धर्म यह है कि पुत्र पिता का

अनुगत रहै । माता के मन का कार्य्य करै । स्त्री पति से मीठी और सुखमयी वाणी बोलै कभी कटु वचन न बोलै ।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसार मुत स्वसा सम्यञ्चाः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।

[अथर्ववेद]

वाक्यार्थ--भ्राता भ्राता से द्वेष न करै। बहन बहिन से द्वेष न करै। तुम सब समान गति वाले और समान कर्म वाले होकर कल्याणी भाषा से वाणी बोलो।

भावार्थ—वैदिक शिक्षा यह है, कि दाय वा भाग के कारण भ्राता भ्राता से द्वेष न करै । गहने आदि के कारण बहन बहन से द्वेष न करै । सब भाई बहन समान गति वाले और समान कर्म वाले हों अर्थात् प्रीति से साथ साथ सर्वत्र जांय आवें हिल मिल के सब काम करें और आपस में सदा कल्याण से बात चीत करें कभी कटुवचन न बोलें ।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः । अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥

[अथर्ववेद]

वाक्यार्थ--ज्येष्ठ कनिष्ठ भाव का अनुसरण करते तुम सब कभी वियुक्त मत होओ। समान सिद्धि वाले समान भार वाले होकर विचरण करते परस्पर मनोहर वचन बोलते आओ मैं तुमको समान गति वाले और समान मन वाले करता हूं।

भावार्थ--तुम बड़े का बड़प्पन मानो छोटे को प्यार करो कभी न्यारे मत होओ। सब कार्यों में समान सिद्धि चाहसे। और सबजने मिलकर कार्य का समान भार ग्रहण करो। सुख से विचरण करो परस्पर एक दूसरे से मनोहर वचन बोलते आओ मैं तुमको समान गति वाले अर्थात् सुख दुःख में

समान सुख दुःख वाले और समान मन वाले अर्थात् एक मन वाले करता हूं।

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि। सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः।

[अथर्ववेद]

वाक्यार्थ---तुम्हरी प्रपा समान हो तुम्हारा अन्न भाग एक साथ हो। तुम को समान बंधनमें बांधता हूं। तुम सब संगत होकर अग्नि की सेवा करो। जैसे नाभि में आरे चारों ओर संगत है

भावार्थ...वेद भगवान जीवों को यह आज्ञा करते हैं कि मैंने तुमको एक ही स्नेह बन्धन में बांधा है। तुम सब एकत्र जलपान करो। इकसाथ अन्न का भाग कर भोजन करो एक साथ मेरी सेवा करो। तुम लोग न्यारे न्यारे काम करने और न्यारे न्यारे भाव वाले हो कर भी मूल विषय में ऐसे एक रहो

जैसे चक्र [पहिया] की नाभी में सब आये[लकड़ी के टुकड़े]एकत्र संगत है । परस्पर न्यारे न्यारे हो कर भी एकत्र संगत हैं । एक कार्य करते हैं

सिद्धान्त यह है कि चाहै किसी विषय में परस्पर वैमत्य भी हो परन्तु स्नेह प्रीति से भोजन पान और सांसारिक कार्यों में एकत्र संगत रहना चाहिये।

अग्निर्वैदेवानामवमो विष्णुःपरमः तदन्तरेणान्याः सर्वाः देवताः । विष्णुस्सर्वाः देवताः

[एतरेय ब्राह्मण अध्या० खंड १]

अर्थ... अग्नि सब देवताओं में अवम [छोटे] हैं। विष्णु सब देवताओं में परम [श्रेष्ट] है इन्हीं के मध्य में और सब देवता हैं ।

वैदिक समस्त कर्म अग्नि से आरम्भ होते हैं। विष्णु में जाकर सब समाप्त हो जाते हैं । इन्द्र वरुण आदिक देवता सब इसी के मध्य में आजाते हैं । इसी से विष्णु ही सर्व देवता हैं ।

विज्ञान सारथिर्यस्तुमनः प्रग्रह वान्नरः

विज्ञान सारथि र्यस्तुमनःप्रग्रह वान्नरः

सोऽध्वनः परमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्

(कठ... उपनिषद् २ अध्या, ३ वल्ली ९ अङ्क)

विज्ञान जिसका सारथी है और जो मन को प्रग्रह (लगाम) बनाता है वही पुरुष इस संसार कान्तार (भयानकवन) के मार्ग का पार पाता है। संसार के मार्ग का पार क्या है? विष्णुका परम पद। विष्णु पदका आश्रय ही संसार का पार है।

नजातु कामान्न भयान्नलोभात्
त्यजेद्धर्मं जीवितस्यापिहेतोः
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये
देहो नित्यो हेतु रस्याप्यनित्यः

(महाभारत)

काम से, भय से, लोभ से, कभी भी धर्म का त्याग न करै। जीवन की रक्षाके लिये भी धर्म को न त्यागे क्योंकि धर्म नित्य है। सुख दुख अनित्य है। अनित्य के लालच से नित्य का त्यागना बुद्धिका कार्य नहीं है। देह भी अनित्य है।

देह का हेतु भी अनित्य है। बुद्धिमान को उचित है कि अनित्य वस्तुओं के प्रलोभन में आकर कभी नित्य

धर्म का त्याग न करे ।

दयया सर्वभूतेषु संतुष्टया येन केन वा
सर्वेन्द्रियाणां शान्त्याच तुष्यत्याशु जनार्दनः

(श्रीमद्भागवत)

सब भूतों पर दया करने से । जो कुछ धर्म से मिले उतने ही पर संतोष करने से सर्वेन्द्रियों की शांति से जनार्दन भगवान अतिशीघ्र संतुष्ट होते हैं ।

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि (शिक्षा)

समाम्नायः समाम्नातः (निरुक्त)

वृद्धिरादैच् (व्याकरण)

म-य-र-स-त-ज-भ-न-ल-ग-संमितं [छंद]

पंच सम्वत्सरमयं (ज्योतिष)

गौग्मा (निघन्टु)

अथैतस्य समाम्नायस्य (कल्पसूत्र)

अथातो धर्म जिज्ञासा (पूर्वमीमांसा)

विष्णु राहितं ब्रह्मोत्या चक्षते (दैवीमीमांसा)

अथातो धर्म जिज्ञासा (उत्तरमीमांसा)

इन सबका अर्थ नहीं लिखा गया क्योंकि वाक्य खंड हैं। इनका अर्थ विस्तृत है। इस से पुण्य पाठ मात्र करलेना चाहिये।

अनन्तर हाथ जोड़ कर यह समस्त ब्रह्म यज्ञ नीचे लिखे मंत्र से श्री भगवान् को समर्पण करे।

इति विद्यात्रयो योनि रयोनि र्विष्णुरीडित: वाग्यज्ञे नार्चितोदेव: प्रीयतां मे जनार्दन:

(अथ होम विधि)

आसन पर बैठकर, ज़मीन में गड्ढा खोदकर वा तांबा का एक गहरा बर्तन बनाकर, उसमें अग्नि जलावे जब अग्नि तैयार होजाय तब उसमें घी, चीनी, जव, तिल, चन्दन, पञ्चमेवा आदि मिला कर हविष्य बनाकर नीचे लिखे मन्त्रों को पढ़कर डालदे।

पहले अग्नि का ध्यान करे उसके बाद होम करे।

ध्यान मन्त्र—चत्वारिशृंगा, त्रयोस्यपादा द्वेशीर्षे, सप्तहस्ता सो अस्य। त्रिधाबद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवोमर्त्यां ँआविवेश

इन मन्त्रों को पढ़कर अग्नि में हविष्य डाले।

ओं भूः स्वाहाइदमग्नये। ओं भुवः स्वाहाइदं वायवे। ओं स्वः स्वाहाइदं सूर्याय। ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहाइदं प्रजापतये।* ओं ब्रह्मणे स्वाहाइदं ब्रह्मणे।

ओं प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये। ओं गृह्याभ्यः स्वाहा इदं गृह्याभ्यः

---

* जो विस्तार से हवन करना चाहते हैं वे इस के आगे इन मन्त्रों को पढ़कर हवन करें। ओं देवकृतस्यैनसोवयजनमसि स्वाहा इद मग्नये। ओं मनुष्यकृतस्यैनसोवयजनमसि स्वाहा इदमग्नये। ओं पितृकृतस्यैनसोवयजनमसि स्वाहा इदमग्नये

ओं आत्मकृतस्यै नसोवयजन मसिस्वाहा इदमग्नये। ओं एनसऽएनसोवयजनमसिस्वाहा इदमग्नये। ओं यच्चाहमेनोऽविद्वांश्चकार यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसोवयजनमसि स्वाहा इदमग्नये। ओं प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये। ओं अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इदमग्नये स्विष्टकृते ॥

ओं कश्यपायस्वाहा इदं कश्यपाय। ओं अनुमतयेस्वाहा इदं अनुमतये।

फिर "सर्वंमयिपूर्णँस्वाहा" कह कर पात्र में बचे हुए हविष्य को अग्नि में डालदे।

इसके बाद अग्निकुण्ड से थोड़ी सी आग लेकर घी के बर्त्तन में डालदे। उसे रगड़ कर त्र्यायुष (काजल) बनावे। इसके बाद "त्र्यायुषं यमदग्नेः" यह कह कर उस त्र्यायुष को सिर में लगावे। 'कश्यपस्यत्र्यायुषं' यह कह कर कण्ठ में लगावे। यद्देवेषुत्र्यायुषं यह कह कर दहने हाथ की जड़ में लगावे। तन्नोअस्तुत्र्यायुषं यह कह कर हृदय में लगावे। इसके बाद जल से अग्नि के चारों ओर घेरदे।

अथ तर्पण।

जल एक तांबे वा चांदी के बरतन में रख कर हाथ में अर्घा लेकर पूर्व दिशा की ओर मुंह कर इन मन्त्रों को पढ़ता जाय और जल पतली धार से गिरता जाय।

उँ ब्रह्मविष्णुरुद्रास्तृप्यन्ताम् । उँ वेद र्षिपुराणाचार्यगन्धर्वेतराचार्यास्तृप्यन्ताम् उँ संवत्सरदेव्यप्सरादेवानुगनागसागर पर्वतसरितस्तृप्यन्ताम् । उँ मनुष्ययक्षरक्षः पिशाचसुपर्णभूतपशुवनस्पत्योषधि भूत ग्रामास्तृप्यन्ताम् ।

(उत्तर की ओर मुंह करके और जनेऊ को माला की तरह कण्ठ में लटकाकर अर्घा का मुंह फेर कर इस मन्त्र को पढ़कर जल गिरावे ॥

उँ सनकसनन्दन सनातन सनत्कुमार कपिलासुरि वोढुपञ्चशिखास्तृप्यन्ताम् ।

उँ कव्यवाडनलसोम यमार्यमाग्निष्वात्त सोमपाबर्हिषदस्तृप्यन्ताम् ।

इस के बाद दक्खिन ओर मुंह कर के बाये पैर को दबाकर और दाहिने पैर को उठाकर जनेऊ उलटा करके अर्थात् जनेऊ को दाहिने कंधे के ऊपर रखे और बाईं तरफ उस का एक छोर लटका देवे

तिल फूल अक्षत, [चावल] यव, चन्दन सुफेद, जल में मिलादेवे। फिर नीचे मंत्रों को पढ़ता जाय और अंगूठा और तर्जनी के बीच से तीन तीन दफे जल गिराता जाय।

यमधर्मराजमृत्युभ्यो नमः स्वधाः। ओं अन्तक वैवस्वतकाल सर्वभूतक्षये भ्योनमः स्वधा ॥ ओं औ दुम्बर दध्न-नील परमेष्ठि वृकोदर चित्र चित्रगुप्तेभ्यो नमः स्वाहा ॥

इस के बाद नीचे लिखे मंत्र को पढ़ कर अपने पिता, पितामह, प्रपितामह आदि मरे हुए परिवारजनों का स्मरण करे।

ओं उशन्तस्त्वा निधीमहि उशन्तऽः समिधीमहि। उशन्तु शतआवह पितृन् हविषेऽअत्तवे। समस्तापितॄन् आवाहयिष्ये।

ओंअमुकगोत्रः* अस्मत्पिता अमुकना. मा † वसुस्वरूपः सपत्नीकः तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा ३। ओं अमुकगोत्रः

---

* अमुक गोत्रः-की जगह गोत्र का नाम कहना चाहिये जिस के लिये जल दिया जाय। अमुक नामा की जगह जिसको जल देना हो उस का नाम कहे। वह ब्राह्मण होतो उनके नाम के आगे "शर्मा" जोड़ना चाहिये। क्षत्रिय होतो "वर्मा" वैश्य होतो "गुप्त" और शूद्र होतो "दास"।

† इस के बाद स्त्री को, पुत्र को पुत्री को, सहोदर भाई को सौतेली मा के पुत्र को, ताऊ को, काका को, ताऊ के पुत्र को, काका के पुत्र को, मामा को, फूआ को, मावसी को बहिन को, सौतेली मा की पुत्री को, ससुर को, मामा को, गुरु को, शिष्य को, मित्र को, क्रम से नाम कहके जलदेना चाहिये [जो जीते हैं उनके नाम तर्पण नहीं करना] इस के बाद नीचे लिखे श्लोकों कोपढ़कर तर्पण करे।

अस्मत्प्रपितामहः अमुक नामा रुद्रस्वरूपः सपत्नीकः तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा३ ओं अमुक गोत्रः अस्मत्प्रापितामहः अमुक नामा आदित्य स्वरूपः सपत्नीकः तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा ३ ॥

ओं अमुक गोत्र अस्मन्मातामहः अमुक नामा वसुस्वरूपः सपत्नीकःतृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा । ३ । ओं अमुकगोत्रः अस्मत्प्रमातामहः रुद्रस्वरूपः सपत्नीकः तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा ३ । ओं अमुकगोत्रः अस्मद्वृद्ध प्रमातामहः आदित्य स्वरूपःसपत्नीकःतृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा ३ ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षि पितृमानवाः तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृ मातामहादयः ।

अतीतकुल कोटीनां सप्तद्वीप निवासिनाम्
आब्रह्मभुवना ल्लोकादिदमस्तुतिलोदकम्
येऽबान्धवा बान्धवा येऽन्य जन्मनि बान्धवाः। तेसर्वे तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा।

फिर यह कह कर साफी के एक किनारे को जल में भिंगा कर जमीन में गार देवे जिस से कपड़े का जल जमीन पर गिर जावे।

येचास्माकंकुलेजाता अपुत्रा गोत्रिणोमृताः
तेपिबन्तु मयादत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम् ॥

फिर खड़ा होकर पूर्व दिशा की ओर मुंह कर के जनेऊ को ठीक करके [बाएं कांधेपर रख कर दाहिने बगल में लटकाकर] नीचे लिखे मंत्र को पढ़ कर सूर्य को अर्घ दे।

ओंनमोविवस्वतेब्रह्मन् भास्वतेविष्णुतेजसे
नमः सावित्रे शुचये नमस्ते कर्म साक्षिणे।

अथ वैश्य देव बलि।

जमीन में जलसे धोकर [होसके तो गोबर से लीप कर] जो अन्न भोजन के लिये घर में तैयार हो अथवा चावल को तीन बार धोकर नीचे लिखे देवता ओं का नाम लेता जाय और थोड़ा थोड़ा अन्न गिराता जाय।

१ ओं धात्रेनमः इदं धात्रे।
२ ओं विधात्रे नमः इदं विधात्रे।
३ ओं वायव्यै नमः इदं वायव्यै।
४ ओं वायव्यै नमः इदं वायव्यै।
५ ओं वायव्यैनमः इदं वायव्यै।
६ ओं वायव्यैनमः इदंवायव्यै।
७ ओं प्राच्यैदिशे नमः इदंप्राच्यैदिशे।
८ ओं दक्षिणस्यैदिशे नमः इदंदक्षिणस्यै
९ ओं पश्चिमायैदिशे नमः इदंपश्चिमायै।
१० ओं उदीच्यैदिशे नमः इदंउदीच्यैदिशे

११ ओं ब्रह्मणे नमः इदं ब्रह्मणे ।

१२ ओं अन्तरिक्षाय नमः इदंअन्तरिक्षाय ॥

१३ ओं सूर्याय नमः इदं सूर्याय ।

१४ओंविश्वेभ्योदेवेभ्योनमः इदंविश्वेभ्यो देवेभ्यः

१५ ओं विश्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः ।

इदंविश्वेभ्योभूतेभ्यः ॥

१६ ओं उषसे नमः इदंउषसे ।

१७ ओं भूतानांपतयेनमः इदंभूतानांपतये

१८ ओं गृहदेवताभ्यो: नमः*

---

* इस जगह पर इस तरह नैवेद्य चढ़ाना चाहिये अन्न चावल, वा, मिठाई आदि रख कर उसमें तुलसी डाल कर उसके चारों ओर पानी से घेरा देकर यह मन्त्र पढ़े ।

ओं नाभ्याऽआसीदन्तरिक्ष ँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत । पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथालोका ँ अकल्पयन् ॥

फिर इन मन्त्रों को कहे । ओं प्राणायस्वाहा । ओं समानायस्वाहा ओं उदानायस्वाहा ॥

फिर इन मन्त्रों को पढ़ कर आचमन करावे । ओं केशवायनमः स्वाहा ओं नारायणायनमः स्वाहा ओं माधवायनमः स्वाहा ।

१९ ओं पितृभ्यः स्वधानमः इदं पितृभ्यःस्वधा ।

२० ओं हन्तते सनकादि मनुष्यभ्योनमः इदं हन्ते सनकादि मनुष्येभ्यः ।

२१ तीन वार गायत्री का जप करे ।

२२ ओं यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनम् कह कर अन्न के वर्त्तन को पोंछ डाले ।

यदि यह सब करने में देर लगे । वा इतना न कर सके तो केवल नीचे लिखे मंत्रों को कह कर अन्न भूमिपरगिरादेवे

ओं चतसृभ्योः दिग्भ्योनमः ।

ओं भूतभ्योनमः ।

ओं पितृभ्योनमः ।

ओं विश्वेभ्योदेवेभ्योनमः ।

ओं ब्रह्मविष्णुरुद्रादि देवेभ्योनमः ।

ओं सर्वं परिपूर्णमणु । अक्षय्यमस्तु ।

सुगमता के लिये हम चक्र लिख देते हैं । जिस से विश्वे देव बलि करने में सहज होगा ।

२ ओं विधात्रेनमः इदं विधात्रे ।

१० ओं उदीच्यैदिशेनमः इदं उदीच्यैदिशे

६ ओं वायव्यैनमः इदंवायव्यै ।

(देव यज्ञः) ४ †

१८ गृहदेवतानां नैवेद्योऽर्पणीयः ।

१७ ओं भूतानां पतयेनमः इदंभूतानांपतये

१६ ओं उषसेनमः इदं उषसे ।

(मनुष्य यज्ञः) ३ *

१५ ओं विश्वेभ्योभूतेभ्योनमः इदं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः ।

१६ ओं विश्वेभ्यो देवेभ्योनमः इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः ।

२० ओं हन्तते सनकादि मनुष्येभ्योनमः इदं हन्तते सनकादि मनुष्येभ्यः ।

(निर्णेजनं) ६

२२ ओं यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनं ॥ यह कहकर वह वरतन धोकर वायव्य दिशामें फैंक दे

२१ सव्येन ब्रह्मयज्ञ सिद्ध्यर्थं तिस्रो गायत्री जपेत् ।

(ब्रह्मयज्ञकी सिद्धिकेलिये गायत्रीका तीनवारजपकरे)

† नाभ्या आसीत्—यह मन्त्र पढकर देवता को भोग लगावे । प-

१ ओं धात्रेनमः इदंधात्रे ।

७ ओं प्राच्यै दिशे नमः इदं प्राच्यै दिशे ।

३ वायव्यैनमः इदंवायव्यै ।

८ ओं दक्षिणस्यैदिशेनमः इदंदक्षिणस्यैदिशे

४ ओं वायव्यैनमः इदं वायव्यै ।

१३ ओं सूर्यायनम इदं सूर्याय ।

१२ ओं अन्तरिक्षायनमः इदं अन्तरिक्षाय ।

११ ओं ब्रह्मणेनमः इदं ब्रह्मणे ।

(नित्यश्राद्धम्)

१९ ओं पितृभ्यःस्वधानमः इदंपितृभ्यःस्वधा दक्षिण

५ ओं वायव्यैनमः इदं वायव्यै ।

९ ओं पश्चिमायै दिशे नमः इदं पश्चिमायै

---

* यह आहुति, जनेऊ को माला के समान पहिरकर देवे । + यह आहुति जनेऊ को दाहिने कन्धे पर रख कर और बाईं तरफ लटका कर देवे ।

श्चिम

अतिथि पूजा।

संध्या, वेदपाठ, होम, तर्पण, और विश्वे देववलि करने के बाद आधे घंटे तक अतिथि का बाट देखे उस समय यदि कोई आजाय तो उसका पैर धोकर आसन पर बैठाकर प्रेम से बोले और अपनी शक्ति के अनुसार उसे भोजन करावे।

अतिथि वही कहलाता है जो अचानक आजाय जाति का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वा, वैश्य हो। गरीब हो, पवित्रता के साथ रहता हो। थका हो। विना भोजन किये हो। प्यासा हो। धूप से तपा। और सन्तोषी हो।

यदि इन तीनों जाति का कोई अतिथि न आवे तो समय पर शूद्र अतिथि को भी यथोचित सत्कार के साथ भोजन करा देवे।

उसके बाद गृहस्थ को भोजन करना चाहिये।

अतिथि पूजा की प्रशंसा शास्त्रकारों ने इस प्रकार की है।

बालोवा यदिवा वृद्धो युवावा गृहमागतः
तस्यापूजा विधातव्या सर्वस्याभ्यागतोगुरुः १
गुरुराग्नि र्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणोगुरुः।
पतिरेको गुरुःस्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतोगुरुः २
अतिथिर्यस्यभग्नाशो, गृहात्प्रतिनिवर्त्तते।
सतस्मैदुष्कृतंदत्वा, पुण्यमादाय गच्छति।३
तृणानिभूमि रुदकं वाक्चतुर्थीच सूनृता।
एतानितु सतांगेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ४

लड़का हो, वा जवान हो, वा बुड्ढा हो, यदि वह अपने घर आजाय तो उसकी पूजा करनी चाहिये। कारण यह कि अतिथि सब का गुरु है अर्थात् पूज्य है ॥ १ ॥ ब्राह्मणों के गुरु अग्नि हैं, चारों वर्णों के (जातियों के) गुरु (पूज्य) ब्राह्मण हैं। स्त्री का गुरु पति है। और अतिथि सबका गुरु है। इस कारण अतिथि की पूजा करनी चाहिये ॥ २ ॥ जिस के दरवाजे पर अतिथि आकर बिना भोजन आदि सत्कार पाकर ही चला जाता है तो वह अतिथि

अपना सब पाप उसको (जिसके दरवाजे पर से लौट जाता है) देकर और उसका सब पुन्य लेकर चला जाता है ॥ ३ ॥

बैठने के लिये जमीन, बिछाने के लिये घास, पीने के लिये ठंढा जल, और चित्त प्रसन्न करने के लिये मीठी बात, सज्जनों के घर पर जब जाइये तब मिलती है ये चीजें सज्जनों के घर में कभी नहीं घटतीं।

तात्पर्य यह कि अतिथि के आजाने पर यथा शक्ति जरूर उसका सत्कार करना चाहिये।

इति पञ्चमहायज्ञाः समाप्ताः।

०.११.१४ ।

Date	No.	Date	No.